प्रकाशक का वक्तव्य

स्वर्गीय श्रीमान् बड़ौदा नरेश सर सयाजीराव गायकवाड़ महोदय ने बम्बई सम्मेलन में स्वयं उपस्थित होकर ५०००) रुपये की जो सहायता सम्मेलन को प्रदान की थी, उससे सम्मेलन ने सुलभ साहित्य-माला के अंतर्गत कई उत्तमोत्तम पुस्तकें प्रकाशित की हैं। प्रस्तुत पुस्तक उसी माला में प्रकाशित हो रही है।

साहित्य-मंत्री

प्रथम वार :: १००० :: मूल्य ।||)

मुद्रक :: गिरिजाप्रसाद श्रीवास्तव, हिन्दी साहित्य प्रेस, प्रयाग ।

भूमिका

भगवान राम में जितनी मर्यादा है, श्रीकृष्ण में उतनी ही सरसता है। यद्यपि राम-श्याम में मैं कोई भेद नहीं समझता और है भी नहीं, किंतु इसी सरसता के कारण मेरा झुकाव कृष्ण की ओर कुछ अधिक है। क्या किया जाय, हृदय ही तो है। कृष्ण की वह सरसता मुझे रसखान के सवैयों में पूर्णरूप से दिखाई दी। रसिक रसखान का एक-एक सवैया मेरे हृदय में घर करता गया। अतः एम० ए० (हिंदी) की परीक्षा में अनिवार्य विस्तृत निबंध के लिये मैंने रसखान के सरस काव्य को ही चुना। वही निबंध पुस्तक के रूप में पाठकों के सामने प्रस्तुत है।

किसी भी रचना के गुण-दोष-विवेचन के साथ ही यदि वह रचना भी दे दी जाय तो वह विवेचन पाठकों द्वारा सरलता से समझा जा सकता है, किंतु यह तभी संभव है जब कि रचना थोड़ी हो। तुलसीदासजी के काव्य का गुण-दोष-विवेचन करनेवाला उनकी सम्पूर्ण रचनाओं को कैसे सम्मुख रख सकता है? रसखान की रचना थोड़ी है, अतः वह भी इसी पुस्तक में ले ली गई है। रसखान की रचना है तो थोड़ी, किंतु है उच्च कोटि की। इतनी ही रचना के बल पर ये हिंदी साहित्य में एक विशिष्ट स्थान के अधिकारी हो गये।

इनकी रचना रस की ऐसी खान है जो कभी रिक्त नहीं हो सकती, उसमें से रस का निर्मल स्रोत सतत बहता रहेगा। धन्य हो रसखान! मुसलमान होकर भी तुम कृष्ण-प्रेम में ऐसे पगे कि अगणित हिंदू भक्तों के सिरमौर हो गये। रसखान की जितनी भी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है, अतः अधिक न कहकर यही कहेंगे कि पाठक उनकी रचना को पढ़ें और देखें कि उनका हृदय रसप्लावित होता है अथवा नहीं।

रसखान की रचना के प्रायः सभी संग्रह मैंने देखे हैं और उन सब को सामने रखते हुए जो पाठ संयत समझ पड़ा उसी को रक्खा है। कहीं-कहीं चारों

से मतभेद होने के कारण भिन्न पाठ रखना पड़ा है। 'प्रेमबाटिका' के संबंध में एक बात कहनी है ; वह यह कि अन्य संग्रहकर्ताओं ने रसखान के सभी दोहों को 'प्रेमबाटिका' में रख दिया है। कुछ दोहे ऐसे हैं जो रसखान की इतिवृत्ति से संबंध रखते हैं, उनका भला 'प्रेमबाटिका' में क्या काम ? मालूम होता है किशोरीलालजी गोस्वामी को जितने भी दोहे मिले सब को 'प्रेमबाटिका' में रख दिया, और फिर उनके परवर्ती संपादकों ने बिना सोचे-समझे उन्हें ज्यों का त्यों उतार लिया। ध्यान देने की बात है कि निम्नांकित दोहा क्या 'प्रेमबाटिका' में स्थान पाने योग्य है ?

देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान।
छिनहिं बादसा बंस की, ठसक छाँड़ि रसखान॥

इससे स्पष्ट है कि यह रसखान ने अपने मन को संतोष देने के लिये बनाया है, न कि 'प्रेमबाटिका' में रखने के लिये। इसी प्रकार के और भी दस-पाँच दोहे हैं, जिन्हें मैंने 'प्रेमबाटिका' से अलग करके परिशिष्ट में रख दिया है।

इस निबंध के लिखने में मुझे पूज्य गुरुवर पं० विश्वनाथप्रसादजी मिश्र, एम० ए० से बहुत कुछ सहायता मिली है। यों तो शिष्य होने के नाते मैं सदा उनका आभारी हूँ, किंतु इस सहायता के लिए विशेषरूप से उनका कृतज्ञ हूँ।

चंद्रशेखर पांडे

सूचीपत्र

१. संक्षिप्त परिचय

सामग्री की कमी : हिंदी की अनेक विभूतियों का स्वरूप स्पष्ट नहीं है। महात्मा तुलसीदास भक्तवर सूरदास जी आदि तक का जीवन-चरित्र जानने के लिए अनुमान ही का अधिक सहारा लेना पड़ता है। हिंदी क्या, यह समस्त भारतीय वाङ्मय की विशेषता है कि इसमें प्रणेता के जीवनवृत्त की अपेक्षा उसकी कृति-को ही अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। अस्तु मुसलमान भक्त-शिरोमणि, कृष्ण के अनन्य प्रेमी कविवर रसखान की जीवनी पूर्णरूप से ज्ञात नहीं है। इसका उत्तरदायित्व स्वयं कवियों पर तथा उनके समकालीन विद्वानों पर है। प्राचीन काल में आधुनिक काल की-सी जीवनवृत्त सुरक्षित रखने की कोई परिपाटी नहीं थी जिसके अनुसार कवियों के समय, स्थान तथा जीवनगाथा का क्रमबद्ध तथा प्रामाणिक संग्रह प्रस्तुत किया जाता। जनता तो केवल कवि की कृति-सरस्वती में सानंद मज्जन करना जानती थी। आज तीन सौ वर्षों बाद रसखान की यथार्थ जीवनी का पता लगाना समुचित सामग्री के अभाव में कठिन हो गया है, अतः अनुमान का सहारा लेने के अतिरिक्त अन्य साधन ही क्या है ?

वंश-परिचय : भक्तकवि रसखान की स्थूल जीवनी कुछ तो अंतःसाक्ष्य तथा कुछ बहिःसाक्ष्य के आधार पर जानी जा सकती है। रसखान की कुछ रचनाएं उनके जीवन से संबंध रखती हैं। उनका कुछ जीवनवृत्त '२५२ वैष्णवों की वार्ता' में मिलता है। बहुत थोड़ा परिचय 'भक्तमाल' तथा 'शिवसिंहसरोज' में दिया गया है, जो इधर के ग्रंथ हैं। कुछ बातें जनश्रुतियों के आधार पर भी अनुमित हो सकती हैं। रसखान रचित 'प्रेमवाटिका' में एक दोहा है—

देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान ।
छिनहिं बादसा-बंस की, ठसक छोंड़ि 'रसखान' ॥

इससे यह पता चलता है कि ये बादशाह-वंश के थे। भले ही इनका अत्यंत निकट का संबंध न रहा हो, पर दोहे से यह सिद्ध है कि इनका दूर का संबंध बाद-

शाह-वंश से अवश्य रहा होगा। यदि ये राजकुल के बहुत निकट के होते तो 'ठसक छाँड़ि' के स्थान पर 'आस छाँड़ि' लिखते। राजकुल के केवल दूरवर्ती संबंधियों में ही उसकी कोरी ठसक रह जाती है। दूसरी बात यह भी है कि निकटवर्ती संबंधी होने पर शायद इतने शीघ्र ठसक छोड़ भी न सकते थे। ये पठान कहे जाते हैं और इनकी उपाधि सैयद बतलाई जाती है।

जन्मस्थान : इनके जन्मस्थान का पूर्ण निश्चय तो नहीं हो सका, किंतु अधिकांश मतों से ये दिल्ली के कहे जाते हैं। 'शिवसिंहसरोज' में इनका जन्मस्थान पिहानी दिया हुआ है, इस मत को भी कुछ विद्वान मानते हैं। ऊपर के दोहे में दिल्ली शब्द पड़ा हुआ है। इससे स्पष्ट है कि जिस समय इन्होंने ठसक छोड़ी उस समय ये दिल्ली में थे। संभव है इनका मूल-स्थान पिहानी रहा हो और पठानों के समय में इनके पूर्वज दिल्ली में जा बसे हों और मुग़लों के समय में पठानों की शक्ति घटती देखकर ये व्यथित हुए हों।

जन्म-संवत् : न तो स्वयं रसखान ने और न अन्य किसी तत्कालीन लेखक ने इनके जन्म-संवत् के विषय में लिखा है। यह प्रसिद्ध है कि इन्होंने श्री वल्लभाचार्य जी के पुत्र श्री विट्ठलनाथ जी से दीक्षा ली थी। विट्ठलनाथ जी की मृत्यु सं० १६४२ वि० में हुई, अतः स्पष्ट है कि इन्होंने इसके पूर्व ही किसी समय दीक्षा ली। यदि यह अनुमान किया जाय कि इन्होंने सं० १६४० में दीक्षा ली होगी और उस समय इनकी अवस्था २५ वर्ष की मानी जाय तो इनका जन्म-संवत् १६१५ के लगभग ठहरता है। यही संवत् प्रायः सभी वर्तमान साहित्य-इतिहासकारों ने माना है, अतः जब तक पुष्ट प्रमाण के साथ कोई अन्य जन्म-संवत् नहीं मिलता तब तक सं० १६१५ ही मानना उचित है। इसमें संदेह की बात नहीं है कि दीक्षा इन्होंने युवावस्था में ली थी, वृद्धावस्था में नहीं, क्योंकि इनके जीवन-चरित्र से सिद्ध है कि जिस समय ये एक वणिक-पुत्र पर आसक्त थे उस समय कुछ वैष्णवों के उपदेश से या अन्य किसी कारण से ये वृंदावन गए और वहां दीक्षित हुए। ऐसी दशा में दीक्षा के समय उनकी अवस्था २५ वर्ष की मानना संगत ही है।

नाम : यह तो निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि 'रसखान' काव्य में प्रयुक्त कवि का उपनाम है। इनका वास्तविक नाम क्या था इसका ठीक पता नहीं चलता।

शिवसिंह सेंगर ने इनका नाम सैयद इब्राहीम लिखा है। यही नाम साहित्य, इतिहासों या इनकी कविता-पुस्तकों में संपादकों द्वारा दिया गया है। स्वयं इन्होंने अपने नाम का कहीं कोई संकेत नहीं किया। ब्रज-साहित्य में ये 'रसखान' नाम से प्रसिद्ध हुए और रसपूर्ण कविता के कारण इस नाम का इतना महत्त्व बढ़ा कि रसखान शब्द सरस-कविता का पर्याय हो गया। आश्चर्य की बात नहीं, यदि उनके समय में भी लोग रसखान का नाम न जानते रहे हों। पहिले कहा जा चुका है कि नाम से बड़ा काम होता है।

बाल्यकाल तथा शिक्षा: स्वयं रसखान के कथनानुसार ये बादशाह-वंश के थे, अतः यह अनुमान करना अनुचित न होगा कि इनका बाल्यकाल बड़े लाड़-प्यार में बीता होगा। इनकी शिक्षा-दीक्षा का समुचित प्रबंध रहा होगा। संभवतः ये लड़कपन से ही बड़ी तीव्र बुद्धि के रहे होंगे। इन्हें फ़ारसी की उच्चशिक्षा मिली होगी। यह जनश्रुति भी है कि इन्होंने श्रीकृष्ण के स्वरूप का परिचय भागवत के फ़ारसी अनुवाद से प्राप्त किया था। अतः जान पड़ता है कि ये बड़े विद्यानुरागी तथा अध्ययनशील थे। इनकी 'प्रेमवाटिका' में स्वाभाविक, अनन्य, श्रुतिसार, मधुकर-निकर, मात्सर्य तथा मुनिवर्य आदि तत्सम शब्दों को देखने से पता चलता है कि इन्हें संस्कृत का भी अच्छा बोध था।

संसार से विरक्ति तथा कृष्ण-प्रेम का कारण: इनके कृष्णभक्त होने के संबंध में कई जनश्रुतियां प्रचलित हैं। विट्ठलनाथ जी के पुत्र गोकुलनाथ जी ने '२५२ वैष्णवों की वार्ता' में २१८वीं संख्या पर रसखान की भगवद्भक्ति के कारण का उल्लेख किया है, जो नीचे उद्धृत किया जाता है—

"सो वा दिल्ली में एक साहुकार रहेतो हतो॥ सो वा साहुकार को बेटा बहुत सुंदर हतो॥ वा छोरा सों रसखान को मन बहुत लग गयो॥ वाही के पाछे फिर्या करे और वाको जूठो खावे और आठ पहर वाही की नोकरी करे॥ पगार कछु लेवे नहीं दिन रात वाही में आसक्त रहे॥ दूसरे बड़ी जात के रसखान की निंदा बहुत करते हते॥ परंतु रसखान कोई कूं गणते नहीं हते॥ और अष्ट पहेर वा साहुकार के बेटा में चित्त लग्यो रहेतो॥ एक दिन चार वैष्णव मिल के भगवद्वार्ता करते हते॥ करते करते ऐसी बात निकसी जो प्रभू में चित्त ऐसो लगावनो॥

जैसे रसखान को चित्त साहुकार के बेटा में लग्यो है ॥ इतने में रसखान ये रास्ता निकस्यो विननें ये बात सुनीं ॥ तब रसखान ने कही जो तुम मेरी कहा बात करोहो ॥ तव वैष्णवन ने जो बात हती सो बात कही ॥ तब रसखान बोले प्रभू को स्वरूप दीखे तो चित्त लगाईये ॥ तब वा बैष्णव ने श्रीनाथ जी को चित्र दिखायो ॥ सो देखतहि रसखान ने वो चित्र ले लियो और मन में ऐसो संकल्प कर्यो जो ऐसे स्वरूप देखनो जब अन्न खानो उहां सुं घोड़ा पर बैठ के एक रात्र में बृंदाबन आयो ॥ और आखो दिन सब मंदिरन में वेप बदलाय के फिर्यो ॥ और सब मंदिरन में दर्शन किये और वैसे दर्शन नहीं भये तब गोपालपुर में गयो ॥ और वेप बदलाय के श्रीनाथ जी के दर्शन करबे कुं गयो ॥ तब सिंघपोरिया ने भगवदिच्छा सुं वाके चिन्ह बड़ी जात वाले के पहेचाएये ॥ तब वाकुं धक्का मार केकाढ़ दियो ॥ सो जाय के गोविंदकुंड पर पड़ रह्यो ॥ तीन दिन सूधी पड़ रह्यो ॥ खावे पीवे की कछु अपेक्षा राखी नाहीं । तब श्रीनाथ जी ने जानी ये जीव दैवी है ॥ और शुद्ध है और सात्विक है मेरो भक्त है याकुं दर्शन देउं तो ठीक ॥ तब श्रीनाथ जी ने दर्शन दये ॥ तव वे उठ के श्रीनाथ जी कुं पकड़बे दौर्यो ॥ सो श्रीनाथ जी भाग गये फेर श्रीनाथ जी श्री गुसाईं जी सुं कही ये जीव दैवी है ॥ और म्लेच्छ योनि कुं पायो है ॥ जासुं याके ऊपर कृपा करो याकुं शरण लेउ ॥ जहां सूधी तुमारो संबंध जीव कुं नहीं होवे तहां सूधी मैं वा जीव कुं स्पर्श नहीं करुं हुँ वासुं बोलुं नहीं हुँ ॥ और वाके हाथ को खावुं हुँ नहीं जासुं आप याको अंगीकार करो ॥ तव श्री गुसाईं जी श्रीनाथ जी के वचन सुन के गोविंदकुंड पें पधारे और वाकुं नाम सुनाये ॥ और साक्षात् श्रीनाथ जी के दर्शन श्री गुसाईं जी के स्वरूप में वाकुं भये ॥ तव श्री गुसाईं जी विनकुं संग ले के पधारे और उत्थापन के दर्शन कराये ॥ महाप्रसाद लिवायो ॥ तव रसखान जी श्रीनाथ जी के स्वरूप में आसक्त भये ॥ तब वे रसखान ने अनेक कीर्तन और कवित्त और दोहा बहोत प्रकार के बनाये ॥ जैंसे जैसें लीला के दर्शन विनकुं भये ॥ वैंसे ही वर्णन किये ॥ सो वे रसखान श्री गुसाईं जी के ऐसे कृपापात्र हते ॥ जिनको चित्र के दर्शन करतमात्र ही संसार में सुं चित्त खेंचाय के और श्रीनाथ जी में लग्यो इनके भाग्य की कहा बड़ाई करनी ।”

यदि उपर्युक्त उद्धरण की सभी बातों पर विश्वास न करें तो इतना निष्कर्ष तो अवश्य निकलता है कि रसखान किसी वैश्य-पुत्र के लौकिक प्रेम पर अपना सब कुछ न्यौछावर कर चुके थे। वही लौकिक प्रेम भगवद्भक्ति में परिणत हो गया। फलस्वरूप आपने विट्ठलनाथ जी से दीक्षा ली।

स्त्री पर अनुरक्ति : दूसरी जनश्रुति यह है कि रसखान किसी स्त्री पर अनुरक्त थे, वह बड़ी मानिनी थी, बात-बात में रूठ जाया करती थी। उसके द्वारा अपमान सहकर भी ये उसके प्रेम में लगे रहे। एक दिन ये श्रीमद्भागवत का फ़ारसी अनुवाद पढ़ रहे थे। गोपियों का विरह-वर्णन पढ़ते-पढ़ते इनके मन में अकस्मात् यह बात आई कि जिस नंदनंदन पर सहस्रों गोपियां न्यौछावर थीं, उन्हीं से मन क्यों न लगाया जाय। अतः ये दिल्ली छोड़कर वृंदावन आ बसे और श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त हो गये। कहा जा सकता है कि 'प्रेमवाटिका' का निम्नांकित दोहा इसी घटना की ओर संकेत करता है।

तोरि मानिनी तें हियो, फोरि मोहिनी-मान।
प्रेमदेव की छविहि लखि, भये मियां 'रसखान' ॥

कथा में चित्र-दर्शन : तीसरी जनश्रुति यह है कि एक स्थान पर श्रीमद्भागवत की कथा हो रही थी। वहां पर मुरली मनोहर का एक मनोरम चित्र भी सजाया हुआ रक्खा था। संयोग से एक दिन रसखान भी वहां पहुँच गये। श्यामसुंदर की बाँकी-झाँकी देखकर वे उस पर मोहित हो गये। कथा के अंत में उन्होंने पंडित जी से पूछा कि यह साँवली-सलोनी-मनमोहिनी मूर्ति किसकी है? पंडित जी ने कहा कि जो संपूर्ण रसों की खान हैं उन्हीं रसखान श्रीकृष्णचंद्र जी की यह मूर्ति है। रसखान ने फिर पूछा, 'ये कहां रहते हैं'? पंडित जी ने बताया 'यों तो ये सर्वव्यापी हैं किंतु विशेष कर वृंदावन में रहते हैं। बस रसखान सब कुछ छोड़-छाड़कर वृंदावन चले गये और वहां मंदिर के सामने तीन दिनों तक अनशन करके भगवान के दर्शन प्राप्त किये और फिर वहीं रहने लगे। इनके 'रसखान' नाम रखने का कारण भी यही ज्ञात होता है कि इन्हें रसखान श्रीकृष्ण प्रिय लगे थे, अतः इन्होंने कविता में अपनी छाप 'रसखान' ही रक्खी।

हज-यात्रा : चौथी जनश्रुति के अनुसार रसखान एक बार अपने अन्य कई मित्रों

के साथ हज करने जा रहे थे। रास्ते में जब वृंदावन में ठहरे तो श्रीकृष्ण के चरणों में इनका अनुराग हो गया। अकस्मात् अनुराग होने का कारण स्पष्ट नहीं है। संभव है फ़ारसी का अनुवाद पढ़ने या वहीं कहीं श्रीकृष्ण-चित्र दर्शन से ही हुआ हो। प्रातःकाल इन्होंने अपने साथियों से कहा कि आप लोग हज करने जाँय मैं तो ब्रज छोड़कर अब कहीं न जाऊँगा। मित्रों के बहुत समझाने पर भी जब इन्हों-ने एक की न सुनी तो वे लोग चले गये और रसखान वृंदावन में ही रहकर श्री-कृष्ण की भक्ति करने लगे। धीरे-धीरे यह समाचार बादशाह तक पहुँचा। कुछ लोगों ने आकर रसखान से कहा 'बादशाह आपको काफ़िर समझकर आप से बहुत अप्रसन्न हैं वे आपकी सारी संपत्ति हरण कर लेंगे।' इस पर रसखान ने बड़ी लापरवाही के साथ कहा—

कहा करै 'रसखान' को, कोऊ चुगुल लबार।
जो पै राखनहार है, माखन-चाखनहार॥

—प्रेमवाटिका

अपनी समझ से यह कथा इसी दोहे को देखकर गढ़ी हुई जान पड़ती है। कई जनश्रुतियों तथा '२५२ वैष्णवों की वार्ता' के आधार पर यह प्रमाणित है कि रसखान का पूर्व-जीवन संयत न था, वे किसी सुंदर वैश्य-पुत्र अथवा मानवती स्त्री पर अनुरक्त थे, लौकिक प्रेम में पूर्ण रूप से फँसे हुए थे। ऐसी दशा में उनका हज करने जाना समीचीन नहीं जान पड़ता। दीक्षा के समय उनकी आयु लगभग २५ वर्ष की थी, ऐसी पूर्ण यौवनावस्था में उन्हें हज करने की कैसे सूझ सकती है? संभव है कि उपर्युक्त अनेक कारणों में से किसी कारण से जब ये कृष्ण-प्रेम में रँगकर वृंदावन में रहने लगे होंगे तब कुछ कट्टर मुसलमानों को इनका काफ़िर या बुतपरस्त हो जाना बुरा लगा होगा और उन लोगों ने बादशाह से चुगली की हो, जिसे सुनकर बादशाह अप्रसन्न हुआ हो और यह समाचार फिर उन लोगों ने रसखान को दिया हो जिस पर रसखान ने उपर्युक्त दोहा कहा हो। पूर्वापर प्रसंग मिलाने के लिये ही यह हज-यात्रा की कथा जोड़ी हुई मालूम होती है।

दीक्षोपरांत का जीवन तथा जीविका : दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् ये पूर्ण वैष्णव हो गये। मुसलमानपने को छोड़कर एक भक्त हिंदू साधु का जीवन व्यतीत

करने लगे। ये सदा कृष्ण-भक्ति तथा उपासना में लीन रहते थे। साधुओं का सत्संग इनके जीवन का प्रधान कार्य था। कृष्ण-प्रेम में मस्त होकर कवित्त-सवैया बनाते थे और गा-गाकर आनंद मग्न हो जाया करते थे। वैष्णवों में इनका अच्छा मान था। बादशाह द्वारा संपत्ति छिन जाने के पहले ही इन्होंने सारी संपत्ति को मिट्टी समझकर त्याग दी और एक सच्चे साधु की भाँति भगवान के भोग के प्रसाद से ही जीवन-निर्वाह करते थे।

मृत्यु-काल : जन्म-तिथि की भाँति इनकी मृत्यु-तिथि भी अज्ञात तथा अनिश्चित है। 'प्रेमवाटिका' में इन्होंने उसका निर्माण-काल निम्नलिखित दोहे में दिया है—

विधु[१] सागर[७] रस[६] इंदु[१] सुभ, बरस सरस 'रसखान'।
प्रेमवाटिका रचि रुचिर, चिर हिय हरषि बखान॥

'अंकानांवामतो गतिः' के अनुसार विधु, सागर, रस, इंदु से सं० १६७१ निकलता है। इससे स्पष्ट है कि इनकी मृत्यु इसके अनंतर ही हुई होगी। यदि इनकी आयु अनुमानतः कम से कम ६० वर्ष की मान लें तो इनकी मृत्यु १६१५ + ६० = सं० १६७५ में या इसके लगभग हुई होगी।

कुछ अन्य विचारणीय बातें

विवाह : रसखान के कौटुंबिक जीवन का कहीं कुछ भी पता नहीं चलता। पता नहीं वैराग्य के पूर्व रसखान का विवाह हुआ था या नहीं? कोई संतान थी या नहीं? विचार करने से विदित होता है कि इनका विवाह न हुआ रहा होगा। विवाह हुआ होता तो इनकी स्त्री या संतान का कुछ वर्णन अवश्य कहीं मिलता। इनके वैराग्य लेने पर इनके ससुराल के लोग अवश्य इन्हें मनाने आते और इस पर रसखान अवश्य कुछ रचना करते, किंतु इस संबंध का उनका एक भी छंद नहीं मिलता। 'तोरि मानिनी तें हियो फोरि मोहिनी मान' में यदि मानिनी और मोहिनी से पत्नी की ओर संकेत समझा जाय तो संभव है कि वैश्य-पुत्र पर आसक्त रहने के कारण इनकी पत्नी सदा इनसे रूठी रहती रही हो और इनकी भर्त्सना करती रही हो। फिर भी कोई पत्नी केवल इसी कारण से अपने पति से इतना नहीं रूठ सकती कि उसके वैराग्य लेने पर वह चुपचाप रहे।

सौंदर्य-प्रेम : ये सौंदर्योपासक थे, इसमें तो कोई संदेह नहीं। जनश्रुति के अनुसार वैश्य-पुत्र या स्त्री पर इनका प्रेम साहचर्यगत नहीं सौंदर्यगत ही बताया जाता है। 'मोहिनी-मान' का अर्थ रूप का जादू ही है। जब सौंदर्य-निधान मन-मोहन मुरलीधर की छवि देखी तो उन्हीं पर अनुरक्त हो गये। संभव था कि किसी अन्य देवता का चित्र कृष्ण-चित्र से अधिक सुंदर देखते तो उसी पर लट्टू हो जाते। श्रीकृष्ण के प्रेम का कारण रूप ही था, यह इनके दोहों से ही प्रमाणित हो जाता है, यथा—

देख्यो रूप अपार, मोहन सुंदर श्याम को।
वह ब्रज-राजकुमार, हिय जिय नैननि में बस्यो॥

\+ \+ \+

प्रेमदेव की छविहिं लखि, भये मियां 'रसखान'।

उपास्य-देव : ये वल्लभ-संप्रदाय में दीक्षित हुये थे। वल्लभ-संप्रदाय के उपास्यदेव बाल-गोपाल हैं, किंतु इनके उपास्यदेव गोपिकारमण-कुंजविहारी-श्रीकृष्ण-चंद्र जी हैं। यद्यपि बाललीला के भी दो एक छंद इन्होंने रचे हैं किंतु प्रायः सारी रचना यौवन-लीला की ही है। इन्हें रमाने वाली कृष्ण की यौवन-लीला ही थी।

दिल्ली का गदर : इन्होंने एक दोहे में लिखा है 'देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान', किंतु इनके समय दिल्ली में ऐसा कोई राज-विप्लव नहीं हुआ था जिसमें दिल्ली नगर श्मशान हो गया हो। इन्होंने सं० १६४० के लगभग दीक्षा ली थी, यह अनुमान किया था। उस समय दिल्ली के सिंहासन पर सम्राट् अकबर सुशोभित थे। अकबर के सौतेले भाई मिर्ज़ा मुहम्मद हकीम ने, जो काबुल का शासक था, दरबारियों द्वारा उभाड़े जाने पर कुछ थोड़ा-सा उपद्रव किया था। वह दिल्ली के सिंहासन पर स्वयं अधिष्ठित होना चाहता था। उसी को दबाने के लिये अकबर ने सं० १६३८ में अफ़गानिस्तान पर आक्रमण किया था, और सं० १६४२ में मिर्ज़ा की मृत्यु के पश्चात् उसका राज्य भी अपने राज्य में मिला लिया था। संभवतः परस्पर के इसी वैमनस्य और द्वेष के कारण कुछ अशांति हुई हो। मुहम्मद हकीम के षड़यंत्र में दिल्ली के भी कई अमीर सम्मिलित थे, जिनका नेता स्वयं अकबर का मंत्री शाहमंसूर था। हकीम ने 'जाब पर चढ़ाई कर दी थी। अकबर

उस समय बंगाल में था, वह वहां से लौटा और दिल्ली आकर वहां से हकीम को दबाने के लिए चला। साथ में शाहमंसूर भी था। अकबर को षड्यंत्र का पता चल गया और उसने रास्ते में ही उसे फाँसी दे दी। संभव है और षड्यंत्रकारी दिल्ली में ही मारे गये हों और इनके किसी परिचित पर भी आँच पहुँची हो अतः रसखान ने उसे गदर लिख दिया हो और दिल्ली को श्मशान बनाया हो।

नवीन इतिहास ग्रंथों के अतिरिक्त कई स्थानों पर पुराने ग्रंथों तथा रचनाओं आदि में भी रसखान का वर्णन मिलता है। '२५२ वैष्णवों की वार्ता' का उल्लेख पहले दिया जा चुका है। कुछ अन्य स्थलों से भी आवश्यक उद्धरण दिये जाते हैं।

श्रीशिवसिंह सेंगर ने अपने 'शिवसिंहसरोज' में रसखान का वर्णन इस प्रकार किया है—

शिवसिंहसरोज : 'रसखान कवि सय्यद इब्राहीम पिहानी वाले, सं० १६३० में उ०। ये मुसलमान कवि थे। श्री वृंदावन में जाकर कृष्णचंद्र की भक्ति में ऐसे डूबे कि फिर मुसलमानी धर्म त्याग कर मालाकंठी धारण किये हुये वृंदावन की रज में मिल गये। इनकी कविता निपट ललित माधुरी से भरी हुई है। इनकी कथा भक्तमाल में पढ़ने योग्य है।' भक्तमाल से इनका तात्पर्य '२५२ वैष्णवों की वार्ता' से है क्योंकि कथा तो इसी में है और भक्तमाल में तो प्रशंसा के दो चार शब्द हैं।

गोस्वामी राधाचरण ने अपने 'नवभक्तमाल' में लिखा है—

नवभक्तमाल : दिल्ली नगर निवास बादसा-बंस-बिभाकर।
चित्र देखि मन हरो, भरो पन प्रेम-सुधाकर॥
श्रीगोवर्द्धन आय जबै दरसन नहिं पाये।
टेढ़े मेढ़े वचन रचन निर्भय है गाये॥
तब आप आप सुमनाय करि सुश्रूषा महमान की।
कवि कौन मिताई कहि सकै श्रीनाथ साथ रसखान की॥

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने भी 'भक्तमाल' के उत्तरार्द्ध में अन्य मुसलमान भक्तों के साथ इनका नाम लिया है—

भक्तमाल : 'अलीखान पाठान सुता सह ब्रज रखवारे।

इन सभी काव्यधाराओं का संक्षिप्त परिचय देकर यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया जायगा कि किस काव्यधारा का कितना प्रभाव रसखान पर पड़ा तथा किस धारा में रसखान पूर्णतः बहे।

वीर-गाथाओं का अभाव : यों तो किसी भी एक विशिष्ट काल में एक ही प्रकार की कविता नहीं हुई, सभी प्रकार की रचनाएं सभी काल में न्यूनाधिक मात्रा में प्रकाशित हुईं, किंतु इस काल में वीर-गाथाओं की रचना का सर्वथा अभाव था। रीतिकाल में तो भूषण और लाल ऐसे वीर, कवि हो भी गए हैं। वीर-गाथाओं की सृष्टि तभी संभव है जब लोक में संघर्ष चल रहा हो। विदेशी आक्रमण के समय अनेक वीरकाव्य बने। विदेशियों के यहां जम जाने के अनंतर दोनों जातियों का पार्थक्य दूर करने के प्रयत्न आरंभ हुये। कबीर तथा जायसी आदि के प्रयत्न इसी प्रकार के हैं।

ज्ञानाश्रयी शाखा : रसखान के जन्म से लगभग ५० वर्ष पहले महात्मा कबीरदास जी विद्यमान थे और शुद्ध ज्ञान की शिक्षा से हिंदू-मुसलमान में एकता स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे थे। उनके पश्चात् धर्मदास और गुरु नानक ने शुद्ध मानव-धर्म का प्रतिपादन किया। उस समय तक हिंदू-मुसलमान अपनी-अपनी कट्टरता छोड़कर बहुत कुछ हिलमिल गये थे। अतः रसखान को मुसलमान से हिंदू होने में बहुत मानसिक विप्लव न करना पड़ा होगा। यदि उपर्युक्त महात्मागण अपनी कविता द्वारा ऐसा क्षेत्र प्रस्तुत न कर जाते तो रसखान सहसा धर्म बदलने में बहुत हिचकते। दादूदयाल जी रसखान के समकालीन ही थे।

इस शाखा के संतों ने दोहे तथा पद ही लिखे हैं। वर्ण्य विषय तो प्रायः सब का एक है किंतु भाषा क्रम से सुधरती गई है। कबीर की भाषा खिचड़ी है। अधिक भ्रमण के कारण कई भाषाओं के शब्द उनकी कविता में अधिक मिलते हैं। छंदशास्त्र का ज्ञान भी उन्हें न था, दोहे-सा साधारण छंद भी प्रायः अशुद्ध ही है। कबीर के पश्चात् धर्मदास की भाषा कुछ अधिक साफ़ है तथा उनसे भी परिष्कृत भाषा दादूदयाल की है। प्रधानता ब्रजभाषा की ही थी। दादूदयाल जी का जन्म सं० १६०१ तथा मृत्यु सं० १६६० में हुई थी।

प्रेममार्गी शाखा : कबीर ने मनुष्यमात्र में अभेद अवश्य देखा था और उस

अभेद का ज्ञान दूसरों को भी कराने का प्रयत्न किया था, किंतु उनकी शिक्षा-पद्धति में वह आकर्षण और वह सहानुभूति न थी जो जनता के हृदय पर जम-कर बैठ जाती है। उन्होंने हिंदू-मुसलमान दोनों को जी भरकर झाड़-फटकार सुनाई जिसे ऊँचे उठे हुये कुछ ही लोग समझ सके और लाभ उठा सके, किंतु अधिकांश जनता में एक प्रकार की चिढ़-सी उत्पन्न हो गयी। मनुष्य-मनुष्य के बीच जो रागात्मक संबंध है उसे कबीर व्यक्त न कर सके। हिंदू-मुसलमान के हृदयों को मिलाने-वाले प्रेममार्गी सूफ़ी कवि ही थे, जिन्होंने हिंदुओं की कहानियों को उन्हीं की बोली में बड़ी लगन के साथ कहा।

रसखान के जन्म से ५०-५५ वर्ष पूर्व कुतबन कवि ने 'मृगावती' नाम की कहानी लिखी थी। उसके बाद मंझन कवि ने 'मधुमालती' नाम की एक कहानी लिखी। ये आध्यात्मिक कहानियां विशेष लक्ष्य रखकर लिखी गई थीं और रोच-कता लाने के लिये तथा अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए संकेत रूप में हिंदू पात्रों की कल्पना कर ली गई थी। इस शाखा के महाकवि जायसी रसखान से कुछ ही पहले हुये थे। सं० १६०० के लगभग उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'पद्मावत' की रचना समाप्त की थी। सं० १६१२ में उसमान ने 'चित्रावली' नामक पुस्तक लिखी। आगे भी यह धारा बहती रही जिसमें शेख नबी, कासिमपाशा तथा नूर-मुहम्मद आदि कवि हुये, जिन्होंने सांसारिक प्रेम-वर्णन द्वारा आध्यात्मिक रहस्य का उद्घाटन किया। इस शाखा के सभी कवियों ने अपने ग्रंथों के लिए अवधी भाषा चुनी, यद्यपि वह अधिक परिष्कृत न होकर बोलचाल की ही अवधी थी। सभी कवियों ने दोहे-चौपाई में अपनी कहानी कही। इन कवियों के प्रेम की पीर का प्रभाव कुछ अंश में रसखान पर भी पड़ा था। अंतर केवल इतना ही था कि सूफ़ियों का विरह निर्विकार, निराकार, परमब्रह्म परमात्मा के लिए था और रसखान का विरह साकार, सगुण भगवान श्रीकृष्ण के लिए था। प्रेम-पीर की तीव्रता दोनों में समान थी। जायसी कहते हैं—

का भा पढ़े गुने अउ लीखे। करनी साथ किये अउ सीखे ॥
आपुइ खोइ उहइ जो पावा। सो बीरउ मन लाइ जनावा ॥

जो वहि हेरत जाय हिराई । सो पावइ अमिरित, फल खाई ॥

—पद्मावत

और रसखान भगवत-प्रेम को ही भगवत-रूप समझकर कहते हैं—

शास्त्रन पढ़ि पंडित भये, कै मोलवी कुरान ।
जु पै प्रेम जान्यो नहीं, कहा कियो रसखान ॥
प्रेम-फाँसि में फँसि मरै, सोई जिये सदाहिं ।
प्रेम-मरम जाने बिना, मरि कोउ जीवत नाहिं ॥

—प्रेमवाटिका

रामभक्ति-शाखा : भक्तिकाल की रामभक्ति और कृष्णभक्ति शाखाएं समानांतर रूप से चल रही थीं । दोनों शाखाओं को अनेक कवि अपनी रचनाओं द्वारा पुष्ट कर रहे थे । रसखान कवि-कुल-कमल-दिवाकर गोस्वामी तुलसीदास जी के समकालीन थे । बाबा वेणीमाधवदास के 'मूलगुसाइँ-चरित' के अनुसार तो रसखान ने गोस्वामी जी का 'मानस' यमुना-तट पर तीन वर्षों तक सुना था । गोस्वामी जी ने व्रज तथा अवधी दोनों भाषाओं में गीत, बरवै, छप्पय, कवित्त-सवैया तथा दोहे-चौपाई की भिन्न-भिन्न शैलियों में रचना करके अपनी कुशाग्र बुद्धि का परिचय दिया । तुलसीदास जी के अतिरिक्त स्वामी अग्रदास, नाभादास, प्राणचंद चौहान आदि कवि रसखान के समय में वर्तमान थे, जो अपनी कविता से रामभक्ति-शाखा का साहित्य-भांडार भर रहे थे ।

कृष्णभक्ति-शाखा : महाप्रभु वल्लभाचार्य द्वारा चलाया हुआ वल्लभ-संप्रदाय अत्यंत प्रभावशाली तथा व्यापक हो चला था । लोग राधाकृष्ण की प्रेम-लीलाओं में तन्मय हो रहे थे। मुसलमानी दरबार की विलासिता तथा ठाट-बाट के संपर्क में आने से लोग शृंगारी भावों को अधिक पसंद करते थे । ऐसे शृंगारी कवियों की, जो वास्तव में राधाकृष्ण के नाम से नायक-नायिका का प्रेम वर्णन करते थे, एक अलग परंपरा चली, किंतु पहले खेवे में, जो रसखान का समय था, बड़े ऊँचे-ऊँचे कृष्ण-भक्त तथा कवि हो गये हैं । कविशिरोमणि भक्त-प्रवर सूरदास जी अपने 'सूरसागर' की रचना कर चुके थे । सूरदास जी की मृत्यु के समय रसखान की आयु लगभग ८ वर्ष की थी । अष्टछाप के आठों कवि अपनी-अपनी वाणी से पीयूष-वर्षा कर

रहे थे। व्रजभाषा का अधिकांश भांडार उसी समय भरा गया था। भक्तवर श्री-हितहरिवंश जी तो अपनी मधुर कविता के कारण श्रीकृष्ण की वंशी के अवतार कहे जाते थे। इनका रचना-काल सं० १६०० से १६४० तक माना जाता है। कृष्ण-प्रेम में मतवाली मीरा का भी समय रसखान के कुछ ही पहले का है। इन महात्माओं के अतिरिक्त गदाधर भट्ट, स्वामी हरिदास, साधुसेवी सूरदास मदन-मोहन, श्रीभट्ट तथा श्रीहरीराम व्यास आदि कृष्ण-भक्तकवि हो गये हैं। इन सभी महात्माओं ने कृष्ण-संबंधी मधुर, सख्य, दास्य, वात्सल्य आदि भावों को पदों में व्यक्त किया है। एक तो भक्त सूरदास जी से ही कोई भाव नहीं छूटने पाया, अपनी सूक्ष्म दृष्टि से उन्होंने सभी प्रकार के अनूठे भावों की कल्पना कर डाली, दूसरे इन अनेक भक्तों तथा कवियों ने भी अपनी-अपनी अनूठी कल्पना-शक्ति का अच्छा परिचय दिया। कृष्ण-साहित्य उस समय सर्वथा पूर्णता को प्राप्त हो गया था। बाद में जो कृष्ण-साहित्य प्रस्तुत हुआ, वह उस कोटि का नहीं हो सका। इस समय के श्रेष्ठ कवि श्रीनरोत्तमदास जी का नाम नहीं भुलाया जा सकता, जिन्होंने 'सुदामा-चरित्र' लिखकर असंख्य निर्धनों को भगवान पर विश्वास रखना सिखाया। इनका समय सं० १६०२ माना जाता है। नरोत्तमदास जी ने अपनी रचना दोहों और सवैयों में की है, ठीक यही शैली आगे चलकर रसखान ने ग्रहण की।

नीति विषयक रचनाएं : रहीम कवि, जिनका पूरा नाम अब्दुर्रहीम खानखाना था, रसखान के समकालीन थे। रहीम रसखान से केवल ९ वर्ष बड़े थे। इनके नीति विषयक दोहे बड़े मार्मिक तथा तथ्यपूर्ण हैं। यद्यपि इन्होंने 'बरवै नायिका भेद' तथा कुछ फुटकर पद, कवित्त आदि भी लिखे हैं, किंतु इनके दोहे ही अधिक प्रसिद्ध हैं। भाषा पर इनका अधिकार तुलसीदास जी ऐसा ही था। छंद बहुत शुद्ध हैं। इन्होंने भ्रमण बहुत किया था और अपने जीवनकाल में अनेक परिवर्तन देखा था अतः इनका अनुभव बड़ा विस्तृत था। यही कारण है कि ये नीति पर इतने अच्छे दोहे कह सके हैं। ये उस समय के श्रेष्ठ कवि थे।

रीति-ग्रंथकार : यद्यपि रसखान का समय भक्तिकाल के ही अंतर्गत आता है और रीतिकाल श्रीचिंतामणि त्रिपाठी (सं० १७००) से आरंभ होता है, फिर

भी रसखान के समय में कुछ ऐसे कवि हुये हैं जिन्होंने रस, अलंकार, छंद तथा नायिका-भेद संबंधी ग्रंथों की रचना की है। किसी भी काल की दृढ़ और नयी तुली सीमा नहीं निर्धारित की जा सकती। किसी काल के भीतर कुछ विशेष कारणों से किसी दूसरे ही काल का बीजारोपण हो जाता है, और धीरे-धीरे उस काल के स्थान पर दूसरा काल आ जाता है। दूसरा काल आ जाने पर भी पहले काल का साहित्य-निर्माण सर्वथा बंद न होकर शिथिल रूप में होता रहता है। विषय की प्रधानता के कारण ही किसी काल को विशेष नाम दिया जाता है। इसी प्रकार भक्तिकाल में भी रीतिकाल के साहित्य का उदय हुआ और क्रमशः अधिकांश रीतिग्रंथों के बनने के कारण भक्तिकाल के पश्चात् रीतिकाल आ गया।

रसखान के समय के रीति-ग्रंथकारों में सर्वश्रेष्ठ केशवदास जी हैं, जो हिंदी के प्रथम आचार्य कहे जाते हैं। केशवदास जी रसखान से केवल २ वर्ष बड़े थे। इनके मुख्य ग्रंथ 'कविप्रिया' तथा 'रसिकप्रिया' हैं। इनका प्रबंध-काव्य 'रामचंद्रिका' है, किंतु इसमें उतनी सफलता नहीं मिली। यों तो इनके पहले कृपाराम सं० १५९८ में कुछ रस-निरूपण अपनी 'हिततरंगिणी' में कर चुके थे, तथा बलभद्र मिश्र, गोप कवि, मोहनलाल मिश्र तथा करनेस कवि ने अलंकार तथा शृंगार विषयक ग्रंथ लिखे किंतु काव्य के सब अंगों का निरूपण ठीक से किसी ने नहीं किया था, उस काम को आचार्य केशवदास जी ने पूरा किया।

ऊपर यह भली भाँति दिखाया जा चुका है कि रसखान ज्ञानाश्रयी शाखा के कवि दादूदयाल, प्रेममार्गी सूफ़ी कवि जायसी तथा उसमान, रामभक्ति-शाखा के महान कवि श्रीतुलसीदास जी, कृष्णभक्ति-शाखा के भक्तवर सूरदास जी, नीति-ग्रंथकारों में प्रधान रहीम कवि तथा रीति-ग्रंथकारों के आचार्य महाकवि केशवदास जी के समकालीन थे। रसखान का समय हिंदी-काव्य का स्वर्णकाल था। उस समय तक हिंदी-काव्य बहुत समृद्ध हो गया था। काव्य की वैसी उन्नति आज तक नहीं हुई। जायसी, तुलसीदास और सूरदास के स्थानों की पूर्ति करने वाला आज तक कोई कवि नहीं हुआ, रसखान के लिये यह लाभ की बात थी जो ऐसे समय में उनका आविर्भाव हुआ। उस समय तक ब्रजभाषा मँज-सँवर कर परिष्कृत तथा शुद्ध हो गई थी। अनूठी भाव-व्यंजना का क्षेत्र भी ब्रज-कवियों ने तैयार कर

दिया था, छंदोविधान संबंधी शिथिलता भी चली गई थी।

कृष्णभक्ति-शाखा का प्रभाव : इन अनेक शाखाओं में रसखान पर कृष्णभक्ति-शाखा का ही मुख्य प्रभाव पड़ा। इसका कारण यह है कि कृष्णभक्ति-शाखा में सौंदर्योपासना तथा मधुर भाव की ही प्रधानता थी। रसखान सौंदर्योपासक तथा रसिक थे, यह कहा जा चुका है, उनके अनुकूल यही शाखा थी; दूसरा कारण यह है कि इनके इष्टदेव भी तो कृष्ण ही थे। यों तो प्रेममार्गी कवियों का भी कुछ प्रभाव इन पर पड़ा है। भक्तिकाल के अनंतर रीतिकाल में शृंगार की अधिकता का कारण कृष्ण-भक्तों की प्रेम लक्षणा भक्ति भी थी, और यह सूफ़ी प्रेम से प्रभावित हुई थी, इसे कौन अस्वीकार कर सकता है? रीतिकाल का भी प्रवेश हो जाने के कारण रसखान के पदों में गतिभंग या न्यूनाधिक मात्रा का दोष नहीं आने पाया। शृंगार की रुचि का आभास भक्तिकाल के कवियों से ही मिलने लगता है। रसखान में भी दो-एक स्थलों पर वैसा शृंगार-वर्णन मिलता है जो रीतिकाल में अति को पहुँच गया था रसखान का। यह सवैया देखिये—

आज महूं दधि बेचन जात हौ मोहन रोक लियो मग आयो।
माँगत दान में आन लियो, सु कियो निलजी रस जोवन खायो॥
काह कहूं सिगरी री बिथा, 'रसखानि' लियो हँसिकै मुसिकायो।
पाले परी मैं अकेली लली, लला लाज लियो, सु कियो मन भायो॥

रसखान का सांसारिक प्रेम ही कृष्णप्रेम में परिवर्तित होकर अगाढ़ हो गया था, यही कारण है कि भक्ति का रंग जम जाने पर भी वह इनका पीछा न छोड़ सका, फिर भी इस प्रकार के छंद बहुत थोड़े हैं। अधिकतर शुद्ध प्रेम की विह्वलता ही है। रसखान कृष्ण-भक्ति से केवल प्रभावित ही नहीं थे, वरन् स्वयं भी सच्चे कृष्ण-भक्त थे। कृष्ण के सौंदर्य, वेशभूषा, मुरली तथा लीलाओं पर ये मुग्ध और जी-जान से न्यौछावर थे।

३. रचना तथा वर्ण्य विषय

रसखान ने कोई प्रबंध-काव्य नहीं लिखा और न ग्रंथ लिखने के उद्देश्य से उन्होंने सवैये ही लिखे, हां ५२ दोहों की 'प्रेमवाटिका' को यदि पुस्तक मान लें

तो कह सकते हैं कि उन्होंने एक छोटी-सी पुस्तिका लिखी। 'प्रेमवाटिका रचि रुचिर' से विदित होता है कि उन्होंने सोद्देश्य शुद्ध प्रेम का पूर्ण स्वरूप दिखाने के लिये वे दोहे लिखे थे। रसखान परमभक्त थे, कृष्ण-प्रेम की पीर से विह्वल रहा करते थे, उस अवस्था में जो भी मधुर भाव उनके हृदय में आते थे उन्हें वे सवैया या कवित में व्यक्त कर देते थे। यही कारण है कि उनका कोई प्रबंध-काव्य नहीं है। वे हृदय के उद्‌गारों को लय के साथ गाने के लिए सवैया बना लेते थे, इसी में वे संतुष्ट थे और उन्हें शांति मिलती थी। दूसरों के सामने भी वे अपने सवैयों को मस्त होकर गाया करते थे, जिन्हें सुनकर लोग प्रेममग्न हो जाते थे। उन सवैयों को स्वयं गाने के लिए कुछ प्रेमीजन लिख भी लेते थे और जब चाहते थे पढ़कर आनंद लिया करते थे। उस समय संगीतज्ञों की, गाने के लिए भक्तों तथा संतों के सुंदर-सुंदर पद लिखने की, एक विशेष रुचि थी। उसी रुचि के परिणामस्वरूप 'रागरत्नाकर' तथा 'वृहद् रागरत्नाकर' आदि ग्रंथ पाये जाते हैं। इन ग्रंथों में भी रसखान के सवैये मिलते हैं।

रचना का एकत्र होना : जब तक प्रेमी रसखान जीते रहे तब तक उनके मुख से प्रेमलीला के सवैये लोगों को सुनने को मिलते रहे। उनके पीछे भी लोग उनके सवैयों को न भूल सके और एक दूसरे से सुनने लगे। उनके सवैये इतने मधुर होते थे कि उन सवैयों को ही लोग 'रसखान' कहने लगे। यहीं तक नहीं, किसी भी मधुर पद को रसखान के नाम से ही संबोधित करने लगे। जब किसी को रसखान का सवैया या सरस कविता सुनने की इच्छा होती तो कहता 'भाई दो-चार रसखान सुनाओ'। रसखान के न रहने पर स्वभावतः लोगों की इच्छा हुई कि उनकी रचनाएं लिख लें जिससे कालांतर में विस्मृत न हो जांय और जब चाहें पढ़ी या सुनाई जा सकें। रसखान के कुछ विशेष प्रेमी-भक्तों ने कुछ तो लोगों से पूछ-पूछकर और कुछ इधर-उधर लिखे पाकर उनके सवैयों को एकत्र करना आरंभ कर दिया। यद्यपि उनकी पूर्ण रचना कोई भी एकत्र करने में समर्थ न हो सका, फिर भी बहुत कुछ रचना संगृहीत हो सकी है। रसखान के बाद ही जो संग्रह किया गया होगा उसके नाम का पता तो नहीं चल सकता, किंतु वर्तमान समय में उनके कवित्त-सवैयों का संग्रह 'सुजान रसखान' के नाम से प्रसिद्ध है। दोहों के संग्रह का नाम 'प्रेम-

वाटिका' स्वयं रसखान ही रच गये थे। 'सुजान रसखान' में कोई नियम नहीं है, समय-समय पर उठे हुए भावों के सवैये हैं किंतु 'प्रेमवाटिका' नियमबद्ध लिखी मालूम होती है।

गोस्वामी किशोरीलाल जी का संग्रह : रसखान की बहुत थोड़ी रचना होते हुए भी जनता में प्रशंसित होने के कारण तथा उच्च कोटि की होने के कारण इसके जो दो-चार संग्रह हुए हैं, उनका उल्लेख करना अनुपयुक्त न होगा। जहां तक पता चलता है, सबसे प्रथम गोस्वामी किशोरीलाल जी ने 'खड्गविलास प्रेस' बाँकीपुर से 'रसखान शतक' नाम से रसखान की कुछ रचना प्रकाशित करवाई थी। वह संग्रह इस समय यदि अप्राप्य नहीं तो दुष्प्राप्य अवश्य है। वह संग्रह अपूर्ण था, स्वयं गोस्वामी जी को उससे संतोष न था। उन्हें विश्वास था कि यदि अधिक खोज की जाय तो रसखान की और भी रचना प्राप्त हो सकती है। अपनी इच्छा को गोस्वामी जी बहुत दिनों तक न दबा सके, और अत्यंत परिश्रम करके रसखान की अधिक रचनाएं खोज निकालीं। 'भारतजीवन प्रेस' से 'सुजान रसखान' नाम का संग्रह प्रकाशित कराया। इस संग्रह में कुल १३३ छंद हैं, जिनमें १० दोहे-सोरठे हैं तथा शेष कवित्त-सवैये हैं। इस संग्रह के कुछ दिनों बाद रसखान की 'प्रेमवाटिका' का संपादन करके पहिले 'हरिप्रकाश यंत्रालय' फिर 'हितचिंतक यंत्रालय' से प्रकाशित कराई, इसमें कुल ५३ दोहे हैं।

श्रीप्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी का संग्रह : सं० १९८६ में 'हिंदी-मंदिर प्रयाग' से भावपूर्ण आलोचना तथा भूमिका के साथ एक सटिप्पण संग्रह श्रीप्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी ने 'रसखानपदावली' के नाम से प्रकाशित कराया। इस संग्रह में 'प्रेम-वाटिका' भी सम्मिलित है। गोस्वामी जी के 'सुजान रसखान' में १२२ कवित्त-सवैये हैं किंतु इस संग्रह में १३४ हैं। ये १२ अधिक कवित्त-सवैये ब्रह्मचारी जी ने 'रागरत्नाकर' से ढूँढ़कर निकाले हैं, किंतु इन सवैयों के भाव तथा वर्णन-शैली ऐसी है जो भावुक-भक्त रसखान को शृंगारी कवियों के अधिक निकट पहुँचा देती है।

अमीरसिंह जी का संग्रह : तीसरा संग्रह 'काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा' ने अमीरसिंह जी द्वारा कराया। इस ग्रंथ का नाम है 'रसखान और घनानंद', इसमें दोनों कवियों की रचनाएं संगृहीत हैं। रसखान की 'प्रेमवाटिका' और कवित्त-सवैये

प्रायः गोस्वामी जी के संग्रह के आधार पर हैं, कोई विशेष अंतर नहीं है। 'सुजान रसखान' की भाँति इसमें भी कवित्त-सवैयों के बीच-बीच में वे ही १० दोहे-सोरठे आये हैं, किंतु ब्रह्मचारी जी तथा कवि किङ्कर जी (इनका उल्लेख आगे होगा) ने दोहे-सोरठों को 'प्रेमवाटिका' में ही सम्मिलित कर दिया है।

किंकर जी का संग्रह : रसखान की रचना दिन प्रति दिन अधिक पसंद की जाने लगी और उसकी माँग होने लगी। अभी हाल में श्रीयुत कवि किंकर जी ने 'आलोक पुस्तकमाला' के प्रथम पुष्प के रूप में 'रसखान रत्नावली' के नाम से 'भारतवासी प्रेस' दारागंज प्रयाग से एक संग्रह प्रकाशित कराया। इस संग्रह में उन्होंने सबसे पहले कवित्त छाँटकर रख दिये हैं फिर सवैये। 'प्रेमवाटिका' भी इसी संग्रह में है। 'सुजान रसखान' में जो दोहे-सोरठे कवित्त-सवैयों के बीच में आ गये थे उन्हें भी 'प्रेमवाटिका' में रख लेने से इनके दोहों की संख्या कुछ अधिक हो गई है। अन्य संग्रहों में होली का एक पद भी है, किंतु इनके संग्रह में नहीं है। एक से अधिक न मिलने के कारण कदाचित् संदेहवश यह पद नहीं रक्खा। आपने एक काम बड़े मज़े का किया है। अन्य संग्रहों में जो सोरठे थे, उन्हें भी पलट कर दोहे बना डाले। सोचा होगा कौन दोमेल करे, सब के सब एकदिल हो गये। आपने उन दो सवैयों को अपने संग्रह में स्थान नहीं दिया जो घोर शृंगारी हैं। गोस्वामी जी को विशेष काट-छाँट नहीं करनी थी, जो कुछ मिलता गया सब संग्रह में रखते गये। अमीरसिंह जी ने गोस्वामी जी के संग्रह को ज्यों का त्यों उतार दिया केवल पादटिप्पणी में कुछ पाठांतर दे दिये। श्री ब्रह्मचारी जी साधु तथा कृष्ण-भक्त हैं अतः उन सवैयों में उन्हें कुछ खटकने वाली बात नहीं दिखाई पड़ी, सभी कुछ भक्ति के प्रवाह में समा गया किंतु साहित्यिक हृदय वाले किंकर जी ऐसा नहीं कर सके, वे इन सवैयों को नहीं पचा सके। वे सवैये निम्नांकित हैं—

बागन काहे को जाओ पिया, घर बैठे ही बाग लगाय दिखाऊं।
एड़ी अनार सी मौर रही, बहियां दोऊ चंपे की डार नवाऊं॥
छातिन में रस के निबुआ, अरु घूँघट खोल के दाख चखाऊं।
टाँगन के रस के चस कै रति फूलन की 'रसखान' लुटाऊं॥

अंगनि अंग मिलाय दोऊ 'रसखानि' रहे लपटे तरु छाहीं।
संग निसंग अनंग को रंग सुरंग सनी पिय दै गलबाहीं॥
बैन ज्यों मैन सुऐन सनेह को, लूटि रहे रति अंतर नाहीं।
नीवी गहै कुच कंचन कुंभ कहै बनिता पिय नाहीं जु नाहीं॥

ये सवैये स्वयं कह रहे हैं कि किसी घोर श्रृंगारी कवि के हैं। इनको पढ़ने से कृष्ण की ओर कुछ भी प्रेम बढ़ता हुआ नहीं दिखाई पड़ता वरन् किसी संसारी आशिक़ माशूक़ की लीलाओं का दृश्य सामने उपस्थित हो जाता है। यदि इन्हें पढ़ने पर भी किसी का मन सांसारिक प्रेमी-प्रेमिका की ओर न जाय और राधा-कृष्ण की पवित्र प्रेमलीला ही समझे तो उसे ऊँचे दर्जे का महात्मा कहना चाहिए, किंतु यह सब के लिए संभव नहीं है अतः पाठकों के सामने तो इसे नहीं ही रखना चाहिए। केवल रसखान का नाम आ जाने से उनके सवैये मानना ठीक नहीं, क्योंकि हिंदी-साहित्य में यह बात अत्यंत साधारण है। किसी प्रसिद्ध कवि के नाम पर अपनी रचनाओं को चलता करने की रुचि हिंदी-कवियों में प्रायः देखी जाती थी, कोई-कोई तो अब भी अपनी कवित्तों में 'कहै पदमाकर' घुसेड़ देते हैं। दूसरी बात, जिससे इन सवैयों के रसखान का होने में संदेह है, यह है कि रस-खान ने इतना स्पष्ट संभोग-श्रृंगार का वर्णन और कहीं नहीं किया। उनके हृदय में शुद्ध प्रेम तथा भक्ति की भावना अधिक थी। राधाकृष्ण उनके पूज्य—हृदय से पूज्य—उपास्यदेव थे, जिनके विषय में वे इतने खुले श्रृंगार की कल्पना नहीं कर सकते थे। तीसरी बात यह है कि उनका प्रत्येक वर्णन राधा-कृष्ण अथवा गोपी-कृष्ण से ही संबंधित है। कुछ श्रृंगार-वर्णन भी किया है तो उनका नाम लेकर, उनका नाम नहीं छूटने पाया। इन दोनों सवैयों में राधाकृष्ण का कहीं पता नहीं है। इनमें 'पिय', 'बनिता' तथा 'रति' आदि ऐसे शब्द हैं जो संदेह उत्पन्न करते हैं। थोड़ी देर के लिये यदि मान लें कि रसखान को ऐसा भाव लिखना अभीष्ट होता तो भी इन शब्दों के स्थान पर वे क्रमशः 'कृष्ण', 'राधा अथवा गोपिका' तथा 'प्रेम' का व्यवहार करते। इन सवैयों से शुद्ध वासनामय सांसारिक श्रृंगार टपक रहा है, इनमें आध्यात्मिकता की झलक भी नहीं मिलती। अतः जब रसखान के अन्य सवैये ऐसे नहीं हैं तो दो सवैयों को उनके मानकर क्यों उन्हें कलंकित

किया जाय ।

संपादकों की भूल : आश्चर्य है कि सभी संपादकों से एक ही प्रकार की भूल हो गई है । दो सवैयों की पुनरुक्ति तो चारों संपादकों से हुई है और एक सवैया की पुनरुक्ति श्रीब्रह्मचारी जी तथा किंकर जी के संग्रह में अधिक है । यह भूल संभाव्य है, क्योंकि बीस-पचीस सवैयों के बाद यदि फिर वही सवैया दो-एक शब्दों के हेर-फेर के साथ आ जाय तो जल्दी उस पर दृष्टि नहीं पड़ती । इसका कारण रचना की सरसता ही है । हमें भी दो-एक पाठ में पता नहीं चला, वरन् आवश्यकतावश जब पचीसों पाठ करने पड़े तब एक-एक करके तीनों सवैयों पर दृष्टि पड़ी । संपादकों को दोनों सवैये अवश्य ही लिखे मिले होंगे और उन्होंने बिना ध्यान दिये दोनों को उतार लिया । अब यह विचारणीय है कि एक ही सवैया एक ही प्रति में दो जगह कैसे लिखा मिला ? किसी ने किसी से कोई सवैया सुना, घर आकर वह लिखने लगा किंतु ठीक स्मरण न रहने के कारण दो-एक शब्द बदल गये । अब वह अपने परिवर्तित रूप को सुनाने लगा । किसी ने यह परिवर्तित रूप सुना और लिख लिया फिर किसी से शुद्ध रूप सुना । दो-एक शब्दों के बदले रहने के कारण इसे दूसरा सवैया समझकर इसे भी लिख लिया । इस प्रकार किसी एक व्यक्ति की प्रति में एक ही सवैया दो स्थानों पर कुछ दूरी से लिख गया । गोस्वामी जी को कोई ऐसी ही प्रति मिली होगी । उन्होंने संख्या दे-देकर एक के बाद दूसरा छंद रख दिया । अन्य संपादकों ने भी अपने पूर्व के संग्रह को तो बिना कुछ सोचे-समझे ज्यों का त्यों ले लिया, फिर यदि किसी ने कुछ खोज की तो ऊपर से जोड़ दिया और किसी को कारणवश कुछ निकालना हुआ तो निकाल दिया । सूरदास जी की रचना में भी एक ही भाव के दो-दो क्या कई पद हैं, किंतु उनमें से प्रत्येक की पदावली भिन्न रहती है और एक में दूसरे से कुछ नवीनता तथा विशेषता अवश्य रहती है । किंतु सवैयों के इन युग्मों को देखिए, कुछ रेखांकित शब्दों में परिवर्तन के अतिरिक्त कोई अंतर नहीं है ।

> एक समै इक गोप बधू भई बावरी नेकु न अंग सँभारै ।
> माय सुगाय कै टोना सों ढूँढ़ति मातु सयानी सयानी पुकारै ॥
> सो 'रसखानि' कहै सिगरो ब्रज आन को आन उपाय बिचारै ।

कोऊ न मोहन के करतें यह बैरिनि बाँसुरिया गहि डारै ॥
आज भटू इक गोप बधू भई भावंरी नेकु न अंग सँभारै ।
मात अघात न देवनि पूजत सासु सयानी सयानी पुकारै ॥
यों 'रसखानि' घिरयो सिगरो ब्रज कौन को कौन उपाय विचारै ।
कोउ न कान्हर के कर तें यह बैरिनि बाँसुरिसा गहि जारै ॥

*

जा दिन ते वह नंद को छोहरो या वन धेनु चराइ गयो है ।
मोठिही ताननि गोधन गावत वेनु बजाइ रिझाइ गयो है ॥
वा दिन सों कछु टोना सों कै 'रसखानि' हिये में समाइ गयो है ।
कोऊ न काहु की कानि करै सिगरो ब्रज बीर बिकाइ गयो है ॥
ए सजनी वह नंद को साँवरो या वन धेनु चराइ गयो है ।
मोहिनि ताननि गोधन गावत वेनु बजाइ रिझाइ गयो है ॥
ताही घरी कछु टोना सों कै 'रसखानि' हिये में समाइ गयो है ।
कोऊ न काहू की बात सुनै सिगरो ब्रज बीर बिकाइ गयो है ॥

तीसरे युग्म में, जो केवल ब्रह्मचारी जी तथा किंकर जी के संग्रह में है, तो कुछ भी अंतर नहीं है केवल झलकावै और झलकैयत, तुलावै और तुलैयत तथा लजावै और ललचैयत का अंतर है, यथा—

कंचन मंदिर ऊँचे बनाइ कै मानिक लाय सदा झलकावै ।
प्रातहि ते सगरी नगरी गजमोतिन ही की तुलानि तुलावै ॥
पालै प्रजानि प्रजापति सों वन संपति सों मघवाहि लजावै ।
ऐसो भयो तो कहा 'रसखानि' जु साँवरे ग्वाल सों नेह न लावै ॥
कंचन मंदिर ऊँचे बनाइ कै मानिक लाय सदा झलकैयत ।
प्रातहि ते सगरी नगरी गजमोतिन ही की तुलानि तुलैयत ॥
जद्यपि दीन प्रजानि प्रजा तिनकी प्रभुता मघवा ललचैयत ।
ऐसो भयो तो कहा 'रसखानि' जु साँवरे ग्वाल सों नेह न लैयत ॥

'सुजान रसखान' और 'प्रेमवाटिका' का क्रम : रसखान की इन दो रचनाओं में कौन पहले की है और कौन पीछे की, इसका निर्णय भी अनुमान ही के सहारे करना पड़ेगा। 'विधु सागर रस इंदु शुभ' वाले दोहे के अनुसार यदि सागर का सांकेतिक अर्थ ७ लेते हैं तब 'प्रेमवाटिका' सं० १६७१ में समाप्त हुई प्रमाणित होती है, और तब मानना पड़ेगा कि 'प्रेमवाटिका' पीछे की रचना है। किंतु सागर का अर्थ ७ केवल हिंदी वाले ही लेते हैं, संस्कृत में सागर का सांकेतिक अर्थ ४ होता है। अतः यदि संस्कृत के अनुसार अर्थ करें तो 'प्रेमवाटिका' का समाप्ति-काल सं० १६४१ ठहरता है, जिससे कहना पड़ेगा कि यह पूर्व की रचना है। अन्य विद्वानों ने सागर का अर्थ ७ ही लेकर इसे अंतिम रचना माना है किंतु अपनी समझ से तो यह पूर्व की रचना विदित होती है। दीक्षा लेने के बाद भी कुछ दिनों तक उनके पूर्वप्रेम का रंग उन पर चढ़ा रहा और प्रेम के महत्त्व को बढ़ाने के लिए वे 'प्रेमवाटिका' की रचना करते रहे। संभवतः वे यह सिद्ध करना चाहते थे कि जो प्रेम वे कर रहे थे, बुरा नहीं था, शुद्ध और सच्चा प्रेम चाहे जिसके प्रति हो महान ही होता है। एक दोहे में उन्होंने लैला के प्रेम की प्रशंसा की है, यथा—

अकथ कहानी प्रेम की, जानत लैली खूब।
दो तनहूं जहँ एक भे, मन मिलाइ महबूब॥

फिर भी जब तक कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिल जाता तब तक निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

रसखान ने कुल इतनी ही रचना की हो, ऐसी बात नहीं है। अभी तक परिश्रमपूर्ण खोज नहीं हुई। इनकी वे रचनाएं, जो किसी ने लिखी न होंगी, अब नहीं मिल सकतीं, किंतु ऐसा विश्वास किया जाता है कि इनकी और भी रचना मिल सकती है। एक यह भी उपाय है कि घूम-घूमकर उन लोगों से रसखान के सवैये सुने जाय जिन्हें स्मरण हों और फिर संगृहीत छंदों से मिलाये जाय। यदि कोई ऐसा छंद मिले जो संग्रह में न आ सका हो तो उस पर विचार किया जाय और उचित समझा जाय तो उसे रसखान का छंद मान लिया जाय। रसखान की और भी रचना होगी, इस विश्वास का कारण यह है कि वे उन

भक्तों में से थे जो सच्चे अर्थ में संसार से विरक्त हुए थे और भगवान का गुणानुवाद करना ही जिनका एकमात्र कार्य था।

'सुजान रसखान' का वर्ण्य विषय : रसखान भक्त और विद्वान दोनों थे। भागवत का फ़ारसी अनुवाद उन्होंने बड़े चाव से पढ़ा था। दीक्षोपरांत संत विद्वानों के संपर्क तथा स्वाध्याय से संस्कृत का भी कुछ ज्ञान हो गया था। श्रीकृष्ण की लीलाओं से वे भली भाँति परिचित थे। कृष्ण की अन्य लीलाओं की अपेक्षा रसखान को कृष्ण का वंशी बजाकर व्रज-बालाओं को मोहित करने वाला प्रसंग अत्यंत प्रिय था। शिशु-लीला या व्रज के बाद की लीलाएं उन्हें उतना आकर्षित नहीं कर सकीं। इसी कारण 'सुजान रसखान' के प्रायः सभी छंद मनमोहन मुरलीधर तथा गोपिकाओं के प्रसंग के हैं। यद्यपि रसखान सूरदास की भाँति सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों तक नहीं पहुँच सके, फिर भी इनके सवैयों में एक ऐसा अनोखापन तथा मधुरिमा है जो रसोद्रेक के लिये पर्याप्त है। इनके कुछ सवैये तो ऐसे मधुर हैं जो अपनी समता नहीं रखते।

इस प्रकार रसखान के मुख्य वर्ण्य हुए कृष्ण, गोपिकाएं तथा मुरली। कृष्ण की छवि का इन्होंने बड़ा उत्कृष्ट वर्णन किया है। मोर-मुकुट, पीतांबर, कछनी, वनमाला इत्यादि की सहायता से कृष्ण को शोभासागर बना दिया है। उस लावण्यमयी रूप का प्रभाव गोपिकाओं पर कैसा पड़ा, यह बड़ी कुशलता पूर्वक चित्रित किया गया है। कृष्ण की मंद मुसकान देखकर ही न जाने कितनी व्रजबालाएं अपना काम छोड़कर बेसुध हो जाती हैं। गोपियों के साथ कृष्ण की छेड़छाड़ भी अत्यंत भावपूर्ण है। कहीं कृष्ण-गोपियों का लोक-लाज त्याग कर मिलन हो रहा है, किसी नवागता वधू को सचेत किया जा रहा है कि कृष्ण के सम्मुख न पड़ना नहीं तो उनकी मुसकान देखकर तू अपने आपे में न रहेगी। होली खेलने का वर्णन भी सुंदर है।

रसखान ने मुरली का प्रभाव बड़ी लगन और रुचि के साथ कहा है। वंशी बजते ही सब उसी ओर भगती हैं, माताएं तथा सासें पुकारती ही रह जाती हैं पर उनकी कौन सुनता है। मुरली है तो मधुर, पर उसकी ध्वनि सुनकर गोपियां व्याकुल हो जाती हैं अतः मुरली बजाने को वे विष फैलाना कहती हैं। किन्हीं-

किन्हीं को तो मुरली से ईर्ष्या भी होने लगी, वे चाहती हैं कि कोई कृष्ण के हाथ से इसे छीनकर फेंक देता या जला देता तो अच्छा करता।

रसखान का स्वाभिलाप-वर्णन बड़ा ही मार्मिक तथा भक्तों के उपयुक्त ही हुआ है। वे चाहते हैं कि चाहे मनुष्य, पशु, पक्षी, पत्थर या वृक्ष किसी भी रूप में रहें किंतु कृष्ण का साहचर्य निरंतर प्राप्त होता रहे। कृष्ण पर अथवा कृष्ण से संपर्क रखने वाली वस्तुओं पर उन्होंने तीनों लोकों का राज्य न्यौछावर कर रक्खा था। कृष्ण-प्रेम को ही सार बतलाते हुए कहते हैं कि यदि लीला पुरुषोत्तम भगवान कृष्ण के चरणों में प्रेम नहीं है तो संसार के सारे वैभव व्यर्थ हैं।

रसखान ने अधिकतर संयोग-शृंगार ही लिखा है। यद्यपि ब्रज-बालाओं के विरह की आकुलता का वर्णन भी है तथापि वह मथुरा चले जाने पर होने वाला प्रवास विरह नहीं है, वरन् गोकुल में ही रहकर होने वाला मान विरह है। केवल ५-६ सवैये ऐसे हैं जो कृष्ण के मथुरा में रहने के समय के हैं। एक में कुबरी को दंड देने की लालसा है, एक में चेरी बनने की अभिलाषा है, क्योंकि कृष्ण चेरी पर ही रीझे थे। केवल एक सवैये में बाललीला का वर्णन है, वह है कौए का कृष्ण के हाथ से रोटी छीन ले जाना। इसी प्रकार एक सवैये में कृष्ण के कंस का हाथी पछाड़ने का वर्णन है। शेष सभी रचानाएं गोपी-कृष्ण की प्रेममय लीला से संबंधित हैं। करील के कुंजों पर ऊँचे-ऊँचे स्वर्ण मंदिरों को न्यौछावर करने वाले प्रेमी रसखान अपने ढंग के निराले कवि हैं। तुलसीदास जी की भाँति इन्होंने भी मानव-काव्य की रचना नहीं की। इनके काव्य-जगत में केवल चार की सत्ता थी और वे हैं कृष्ण, बाँसुरी, गोपिकाएं और भक्त या दर्शक (स्वयं रसखान)।

वंशी बजाने के साथ-साथ कृष्ण के गोधन गाने का भी वर्णन कई छंदों में है। गोधन गान-विशेष के लिए प्रयुक्त हुआ है, किंतु नाम बदल जाने के कारण पता नहीं चलता कि अब किस गान को गोधन कहें। कदाचित् बिरहा की कोटि का कोई गान रहा होगा, अथवा बहुत संभव है कि बिरहा ही गोधन का स्थानक हो, क्योंकि ग्वालों का मुख्यगान अब भी बिरहा ही है जिसे गाय चराते समय या यों ही वे तन्मय होकर गाते हैं। रसखान के छंदों में भी इन्हीं

प्रकार का वर्णन है जैसे 'गोधन गावत धेनु चरावत'... ।

'प्रेमवाटिका' का वर्ण्य विषय : इन थोड़े से दोहों में रसखान ने प्रेम का विशद और व्यापक वर्णन किया है। ये दोहे इतिवृत्तात्मक नहीं हैं। इनके द्वारा प्रेम का रूप स्पष्ट किया गया है। प्रेम की परिभाषा, प्रेम की पहिचान, प्रेम का प्रभाव, प्रेम-प्राप्ति के साधन तथा प्रेम की सर्वोच्चता इन दोहों में दिखाई गई है। रसखान ने जिस प्रेम का प्रतिपादन किया है वह संसार के साधारण प्रेम से भिन्न आध्यात्मिक प्रेम है। जो 'प्रेमबाटिका' को इस आशा से खोलेंगे कि उसमें नायक-नायिका की प्रेमभरी बातें तथा चुलहबाज़ी पढ़ने को मिलेगी, उन्हें निराश होना पड़ेगा। कवि ने ५२ दोहों में प्रेम की प्रधानता सिद्ध की है, यहां तक कि हरि से भी बड़ा हरि-प्रेम को माना है। 'प्रेमवाटिका' संसार के समस्त प्रेम-साहित्य की एक अमूल्य वस्तु है। यदि विश्वभर का न कहें तो कम से कम भारतीय प्रेम का आदर्श तो यही है। रसखान का प्रेम-निरूपण एक अलग अध्याय में कहेंगे।

४. रसखान की काव्य-शैली

तत्कालीन प्रचलित छंद : जिस समय तक साहित्यिक भाषा संस्कृत थी, उस समय तक संस्कृत छंदों का प्रयोग होता रहा। साहित्य-सिंहासन से किसी भाषा के च्युत होने तथा दूसरी भाषा के सुशोभित होने में कुछ समय लगता है। यह कार्य अचानक नहीं, क्रमशः होता है। अतः एक अवस्था ऐसी भी आती है जब कि दोनों भाषाएं कुछ न्यूनाधिक प्रयोग के साथ चलती रहती हैं। इसी अवस्था में क्रमशः एक का पतन तथा दूसरे का उत्थान और विकास होता चलता है। जब संस्कृत भाषा साहित्य के सिंहासन से च्युत हो रही थी, जयदेव ने देखा कि संस्कृत छंदों की अपेक्षा जनता गीत या पद अधिक पसंद करती है, अतः उन्होंने संस्कृत वृत्तों से हाथ खींचकर गीत-रचना में अपना कौशल दिखाया। उनका अनुमान ठीक था, क्योंकि उनकी रचना 'गीत-गोविंद' अत्यंत लोकप्रिय हुई। जयदेव ने कोमल-कांत-पदावली द्वारा इन गीतों को इतना मधुर तथा रसमय बना दिया कि गीत-छंद श्रोता तथा अन्य कवियों के मन में बैठ गया। जयदेव के अनंतर कवियों ने गीत ही रचने आरंभ किये और जनता भी गीत सुनकर अधिक

प्रसन्न तथा संतुष्ट होने लगी। उस समय से गीतों की परंपरा चल निकली। कबीरदास की अधिक रचना पदों में ही है। भक्त सूरदास का विशाल काव्य-ग्रंथ 'सूरसागर' गीतों में ही रचा गया है। अष्टछाप के अन्य कवियों ने भी पदों की ही रचना की है। महात्मा तुलसीदास जी ने भी 'गीतावली' नाम का ग्रंथ लिखा है जो उच्चकोटि का है। मीरा के गीत प्रसिद्ध ही हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि उस समय गीत-रचना ही प्रधान थी। यद्यपि अन्य छंदों में भी थोड़ी-बहुत रचना होती थी तथापि गीतों की अपेक्षा बहुत कम।

रसखान की छंद-पद्धति : रसखान ने देखा कि रचना-शैली काव्य-पद्धिति से पृथक् हुई जा रही है, गीतों की अपेक्षा अन्य छंदों का प्रयोग कवि बहुत कम करते हैं, गीतों के भार से अन्य काव्य-छंद दबे-से जा रहे हैं, अतः रचना-शैली को काव्य-पद्धति के समीप तथा अंतर्गत लाने के लिये उन्होंने गीतों से हाथ खींचकर कवित्त-सवैयों में रचना की। गीत छंद-शास्त्र के नियमों में बद्ध नहीं हैं, वे स्वतंत्र हैं। किसी एक तथ्य को एक छोटी-सी पंक्ति में ऊपर-नीचे चाहे जितनी पंक्तियां रख दीजिए, हां तुकांत तथा समान मात्राओं का होना आवश्यक है, यद्यपि अब गीतों की पंक्तियों में सिकुड़ने तथा बढ़ने की शक्ति आ गई है। कवित्त-सवैये छंद-शास्त्र के नियमों में पूर्णतया आबद्ध हैं, इनमें गण और लघु-गुरु के कारण कई भेद भी हो गये हैं। रसखान ने मनहरण कवित्त लिखे हैं जिनके प्रत्येक चरण में ३१ वर्ण होते हैं तथा १६, १५ पर यति होती है। सवैयों में रसखान ने मत्तगयंद सवैया चुना है, जिसके प्रत्येक चरण में सात भगण (ऽ।।) और दो गुरु कुल २३ वर्ण होते हैं। किसी-किसी में ये मत्तगयंद के नियम का पूर्ण पालन नहीं कर सके हैं, जैसे

लोग कहैं ब्रज के 'रसखानि' अनंदित नंद जसोमति जू पर।

इसमें ७ भगण और २ गुरु के स्थान पर पूरे ८ भगण अर्थात् २४ वर्ण हो गये हैं, किंतु ऐसे छंद बहुत थोड़े हैं जिनमें नियमों का पालन न हुआ हो।

कवित्त-सवैयों की पद्धति रसखान की नवीन पद्धति नहीं है, वरन् परंपरागत है। बहुत प्राचीन काल से भाटों और चारणों के बीच इसकी धारा चली चली आ रही थी, किंतु क्रमशः इसका प्रवाह शिथिल होता गया। वीरगाथा-काल में कवियों ने छप्पय, तोमर आदि छंदों को अधिक प्रश्रय दिया, क्योंकि वीर-भाव

के लिये वे ही अधिक उपयुक्त समझे गये। भक्तिकाल के ज्ञानाश्रयी शाखा के संत अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे, वे छंद-शास्त्र से परिचित न थे, अतः टेढ़े-मेढ़े गीतों में ही अपना संदेश जनता तक पहुँचाया, हां सरल और छोटा समझकर दोहा छंद को भी अपना लिया था। प्रेम-मार्गी कवियों को सूफ़ी मतानुसार प्रतिपादित केवल प्रेम की पीर की व्यंजना करनी थी, उन्हें छंद-शास्त्र के बखेड़ों से कोई विशेष मतलब न था, अतः उन्होंने भी अत्यंत सरल और छोटे छंद दोहे चौपाइयों को चुना। रामभक्ति तथा कृष्णभक्ति-शाखा में कुछ कवि हुए जिन्होंने कवित्त-सवैयों में रचना की। गोस्वामी तुलसीदास जी की 'कवित्तावली' प्रसिद्ध है। केशवदास ने भी 'रामचंद्रिका' में कवित्त-सवैयों का अधिक प्रयोग किया है। पं० नरोत्तम दास जी ने 'सुदामाचरित्र' सवैयो और दोहों में ही लिखा है। इनके अतिरिक्त निपट निरंजन, हरिवंस अली, राजा बीरबल, गंग तथा बलभद्र मिश्र आदि कवि हुए हैं, जिन्होंने कवित्त-सवैयों में रचना की है। इतने कवियों के होते हुए भी यह ध्यान रखना चाहिए कि इन कवियों के कुल कवित्त-सवैयों से कहीं अधिक पदों की रचना हुई। रीतिकाल में पहुँचकर कवित्त-सवैयों की रचना अधिक मात्रा में हुई।

दोहा अत्यंत प्राचीन और मँजा हुआ छंद है। इसकी धारा अविच्छिन्न रूप से बहती आ रही है और कदाचित् बहती जायगी। इस दोहे छंद में भी रसखान ने रचना की है और अच्छी कुशलता दिखाई है। 'प्रेमवाटिका' में केवल दोहे हैं जो शुद्ध तथा नियमानुकूल हैं। इनका एक गीत भी पाया जाता है, जो होली-प्रसंग का है; पता नहीं इन्होंने और भी गीत लिखे हैं या नहीं, किंतु अभी तक तो एक ही मिला है।

स्वभावोक्ति तथा वक्रोक्ति : किसी बात को कहने के प्रायः दो ढंग होते हैं। एक ढंग तो वह है, जिसके अनुसार ज्यों की त्यों सीधी-सीधी बात बिना शाब्दिक आडंबर के कह दी जाती है, इसे स्वभावोक्ति कहते हैं। मनुष्य स्वभावतः जिस प्रकार बात-चीत करता है उसी प्रकार कवि अपनी शैली को भी बनाने का प्रयत्न करता है, वह कहने वाली बात में किसी प्रकार की शाब्दिक कलई नहीं चढ़ाता। दूसरा ढंग वह है, जिसमें बात सीधे न कहकर घुमा-फिराकर कही जाती है, कवि का संदेश शाब्दिक आवरण से ढका रहता है, इसे वक्रोक्ति या वचन-भंगिमा कहते हैं। जैसे

यदि यह कहना हो कि "विरह-दुख के कारण नित्य आँखों से आँसू बहा करते हैं तो वक्रोक्ति की ओर रुचि रखने वाला कवि कहेगा 'पावस आँखिन माँहि बस्यो है"। कुछ आचार्यों का मत था कि काव्य में वक्रोक्ति ही मूल तत्त्व है, उसके बिना काव्य कैसा ? सीधी-सीधी बात कह देना कविता करना नहीं है। किंतु विचारपूर्वक देखा गया तो पता चला कि सीधे ढंग से बात कहने में भी रस की निष्पत्ति होती है, और जिससे रस की निष्पत्ति होती हो उसे तो कविता मानना ही पड़ेगा। इसी कारण से स्वाभाविक ढंग से कहे हुए रसमय कथन को कुछ लोग स्वभावोक्ति अलंकार के नाम से पुकारने लगे। यदि अधिक दूर तक दृष्टि डाली जाय तो ये दोनों बातें युक्तिसंगत प्रतीत न होंगी। न तो यही ठीक है कि काव्य में वचन-भंगिमा ही सब कुछ है और न स्वाभाविक कथन को स्वभावोक्ति अलंकार कहना ही ठीक है। किसी चमत्कारपूर्ण कथन-शैली को ही अलंकार कहते हैं और यह प्रत्यक्ष है कि सीधी-सीधी कही हुई बात में कोई चमत्कार नहीं है, तब उसे अलंकार की संज्ञा दे ही कैसे सकते हैं ? दूसरी बात यह है कि स्वाभाविक ढंग से कही हुई बात में भी कथित विषय भाव तथा कोमल पदावली के कारण जो उससे रस की निष्पत्ति होती है इस कारण उसे कविता के अंतर्गत लेने में कुछ हिचक भी नहीं हो सकती। तात्पर्य यह है कि स्वभावोक्ति-रचना-पद्धति भी अन्य पद्धतियों की भाँति एक रचना-पद्धति है जो काव्य-शास्त्रानुकूल है। अब यह देखना है कि रसखान ने अपने विभाव-वर्णन में किस पद्धति को ग्रहण किया है।

रसखान की रचना-पद्धति : रसखान ने स्वभावोक्ति को ही अपनी रचना के लिए उपयुक्त समझा और उसी का सहारा लिया। उन्हें जो कुछ भी कहना था उसे सीधे ढंग से बिना कुछ घुमाव-फिराव के कहा। उन्होंने अपनी शक्ति कथन-प्रणाली की विशेषता में न लगाकर विधायक कल्पना के निर्माण में लगाया। रसखान ने यह प्रयत्न नहीं किया कि जो कुछ कहना है उसे विशिष्ट शैली में कहें, वरन् उन्होंने इस बात का प्रयत्न किया कि जो कुछ कहना है वह स्वयं सुंदर तथा मधुर हो। उनका ध्यान कथन-प्रणाली को सुंदर बनाने की ओर न होकर कथ्य को ही सुंदर बनाने की ओर रहा है। यही कारण है कि उनके कहने की शैली में विशिष्टता न होते हुए भी उनकी रचना अत्यंत रसपूर्ण है। चमत्का-

रिक कथन-शैली से युक्त किसी रचना से इनकी विशिष्ट प्रणाली से हीन रचना किसी प्रकार भी कम नहीं है, प्रत्युत उस प्रकार की अनेक रचनाओं से श्रेष्ठ है। देखिए, उनके कहने का ढंग कितना सीधा है, फिर भी कविता कितनी सरस है—

मोरपखा सिर ऊपर राखिहौं गुंज की माल गरे पहिरौंगी।
ओढ़ि पितंबर लै लकुटी वन गोधन ग्वारनि संग फिरौंगी॥
भावतो वोहि मेरो 'रसखानि' सों तेरे कहे सब स्वाँग करौंगी।
पै मुरली मुरलीधर की अधरान धरी अधरा न धरौंगी॥

निम्नांकित दोहे को देखिए, कितने बड़े तथ्य की बात सीधे ढंग से कह दी है, जिसमें कथन की विशिष्ट प्रणाली शायद धक्के खाती फिरेगी—

ज्ञान, ध्यान, विद्या, मती, मत, विश्वास, विवेक।
विना प्रेम सब धूर हैं, अग जग एक अनेक॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि रसखान के कहने का ढंग बहुत सीधा है, किंतु जो वे कहते हैं, वह स्वयं इतना रसपूर्ण तथा प्रभावशाली होता है कि सब का मन आकर्षित कर लेता है। सुनने वालों को यह आभास नहीं मिलने पाता कि इसकी कथन-शैली में कोई विशिष्टता नहीं है अथवा कोई चमत्कार नहीं है, उन्हें किसी भी प्रकार की कमी नहीं मालूम पड़ती। रसखान कृष्ण-प्रेम में मस्त थे, वे कविता-वधू के प्रेमी नहीं थे, इसीलिये उन्होंने काव्य-संबंधी विषयों पर विशेष ध्यान नहीं दिया, वरन् हृदय को घायल कर देने वाली, कृष्ण-प्रेम की पीर उत्पन्न कर देने वाली कृष्ण-लीलाओं की कल्पना की ओर ही विशेष ध्यान दिया है और अपने कार्य में पूर्ण रूप से सफल हुए हैं। चमत्कार रहित होने के कारण उनकी रचना ठुकरा नहीं दी गई, वरन् इसी गुण के कारण उनकी रचनाओं का अधिकाधिक आदर हुआ और होता जा रहा है।

स्वभावोक्ति की उपादेयता : अपने-अपने स्थान पर सभी वस्तुएं अच्छी लगती हैं। केवल अच्छे लगने तक बात नहीं है, प्रत्युत अपने स्थान पर वही और केवल वही वस्तु अधिक उपयोगी सिद्ध होती है। तुलसीदास जी ने भी कहा है—

सुधा सराहिअ अमरता, गरल सराहिअ मीच।

स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति के अपने भिन्न-भिन्न क्षेत्र हैं। एक ऐसा भी क्षेत्र है

जिसमें स्वभावोक्ति ही अधिक उपयुक्त विदित होती है, वक्रोक्ति नहीं। वह साधारण जन समुदाय का क्षेत्र है। यदि हमें सामान्य जनता से कुछ कहना है, यदि हम चाहते हैं कि हमारी बात प्रायः सभी समझ सकें तो हमें चाहिए कि सीधे ढंग से अपनी बात कहें। वक्रोक्ति का आदर कवि-कोविदों तथा साहित्यिकों के बीच अवश्य हो सकता है किंतु सामान्य जनता के बीच उसका आदर होना कठिन है। यही कारण है कि रसखान ने सरल कथन-प्रणाली को चुना, क्योंकि वे साहित्य-क्षेत्र में स्थान पाने के लिये या कवीश्वर कहलाने के लिये कविता नहीं कर रहे थे। वे अपनी मधुर अनुभूतियों में जनता को भी सम्मिलित करना चाहते थे। रसखान ने स्वभावोक्ति को सकारण ग्रहण किया था।

रसखान के कुछ वक्रोक्ति-स्थल : रसखान की प्रधान वर्णन-शैली स्वभावोक्ति ही रही है, किंतु कहीं-कहीं वक्रोक्ति का रूप भी आ गया है। ऐसे स्थल बहुत थोड़े हैं। ब्रज पर कृष्ण का प्रभाव वर्णन करने के लिये कहते हैं—

कोऊ न काहू की कानि करै सिगरो ब्रज बीर बिकाइ गयो है।

यहां पर यह न कहकर कि श्रीकृष्ण ने सब को अपनी ओर आकर्षित कर लिया है, कहते हैं कि सारा ब्रज उनके हाथों बिक गया है, कोई किसी की लज्जा नहीं करता, किसी को किसी का संकोच नहीं रह गया, सब कृष्ण की ओर खिंचे जा रहे हैं। इसी प्रकार और भी कुछ स्थल हैं, जिनमें वक्रोक्ति की छटा दिखलाई पड़ रही है।

नाहि गरो लगि लाज जरो इहि पास पतिव्रत ताल धरो जू।

*

पै न दिखाई परै अब बावरी दै कै वियोग-बिथा की मँजूरी।

*

ताहि दिखाइ हो चाहि उतारयो अरे विष बावरे राग लगाइ कै।

५. रसखान का कवित्व

भाव-व्यंजना : पाठक या श्रोता के हृदय में रस का संचार करना ही काव्य का लक्ष्य है। जिस काव्य के पढ़ने या सुनने से हृदय में रस की उत्पत्ति न हो वह काव्य कहलाने का अधिकारी नहीं। हृदय में रसोद्रेक कराना ही कवि-कर्म का मुख्य उद्देश्य है। कवि भाव-व्यंजना के द्वारा रस की सृष्टि करता है। इस भाव-व्यंजना के लिये साधन की आवश्यकता होती है, और वह साधन है बिंब या रूप। इसी बिंब या रूप के आधार पर कवि भाव-व्यंजना करता है और पाठक अथवा श्रोता के हृदय में रस उत्पन्न करने में सफल होता है। भाव-व्यंजना एक ही प्रकार की नहीं होती, भिन्न-भिन्न प्रकार से भाव-व्यंजना हो सकती है जैसे उक्तिमुखेन भाव-व्यंजना, उद्दीपनमुखेन भाव-व्यंजना तथा संचारीमुखेन भाव-व्यंजना आदि। एक ही कवि विविध प्रकार की भाव-व्यंजनाओं का सहारा ले सकता है अथावा एक ही प्रकार की भाव-व्यंजना कर सकता है।

रसखान में भाव-व्यंजना की विविधता नहीं दिखाई पड़ती। इनकी भाव-व्यंजना उक्तिमुखेन-प्रधान है। भिन्न-भिन्न चेष्टाओं अथवा अंतर्वृत्तियों का वर्णन इन्होंने नहीं किया। भाव-व्यंजना का बहुत सीधा मार्ग ग्रहण किया है। भिन्न-भिन्न परिस्थितियां इनके वर्णन में नहीं आतीं, फिर कारण क्या है कि इनके काव्य में सरसता फूट-फूटकर भर गई है? प्राचीन काल से चला आता हुआ विषय इनके काव्य में आकर पिष्टपेषित क्यों नहीं प्रतीत होता? इसका कारण यह है कि रसखान का विधान बहुत अच्छा हुआ है। उक्तियों के विधान में ही कवि की शक्ति दिखाई पड़ती है। जिसकी उक्तियां जितनी ही आकर्षक तथा प्रभावशाली होंगी उतना ही सशक्त कवि समझा जायगा। बात यह है कि चेष्टाओं के विधान में प्रसार के लिये उतना स्थान नहीं रहता। कवि चेष्टाओं की कल्पना सीमा के बाहर नहीं कर सकता, वे परिमित होती हैं, किंतु उक्तियों की कोई सीमा नहीं है। एक ही भाव के लिये अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार कवि असंख्य उक्तियों की कल्पना कर सकते हैं। दूसरी बात यह है कि चेष्टाओं के प्रायः सभी स्वरूप साहित्य-ग्रंथों में पाये जाते हैं, अतः उन्हीं का वर्णन करने से कवि की प्रतिभा के

लिये उसमें स्थान नहीं रह जाता। रसखान ने जो थोड़ी-बहुत चेष्टाओं का वर्णन किया है वे उनकी स्वतःकल्पित या निरीक्षित हैं, इसीलिये उनमें मौलिकता और सौंदर्य आ गया है। परंपरागत चेष्टाएं भी हैं किंतु कम हैं। इनका निरीक्षण (observation) बहुत सूक्ष्म है। कृष्ण की मुसकान देखकर एक मूर्छित गोपी का सपरिवार कैसा स्वाभाविक चित्र खींचा है—

अबहीं गई खिरक गाइ के दुहाइबे को,
बावरी ह्वै आई डारि दोहिनी यों पानि की।
कोऊ कहै छरी, कोऊ भौन परी डरी, कोऊ-
कोऊ कहै मरी गति हरी अँखियानि की॥
सास ब्रत ठानैं नंद बोलत सयाने धाइ,
दौरि दौरि आनैं, मानो खोरि देवतानि की।
सखी सब हँसैं मुरझानि पहिचानि, कहूं
देखी मुसकानि वा अहीर 'रसखानि' की॥

इनकी अनूठी उक्ति पर हृदय बिना मुग्ध हुए नहीं रहता। चेष्टाओं का वर्णन करते-करते अंत में एक ऐसी उक्ति कह देते हैं जो सीधे हृदय पर जा टिकती है।

बंसी बजावत आनि कढ़ो सो गली में अली कछु टोना सो डारे।
हेरि चितै तिरछी करि दीठि चलो गयो मोहन मूठि-सी मारे॥
ताही घरी सों परी धनि सेज पै प्यारी न बोलति प्रानहु वारे।
राधिका जीहै तो जीहैं सबै न तो पीहैं हलाहल नंद के द्वारे॥

इस अंतिम चरण में कितनी स्नेहपूर्ण धमकी भरी है! गोपियों की अनन्यता भी लक्षित हो रही है। उनका तात्पर्य है कि कृष्ण का तो हम कुछ बिगाड़ नहीं सकतीं, हां अपने प्राण भले ही दे सकती हैं सो नंद के द्वार पर हलाहल पी-कर प्राण त्याग देंगी। इसी प्रकार की उक्तियों की कल्पना करके रसखान ने अपने प्रत्येक पद में रस भर दिया है। गोपियों को कृष्ण के रोककर खड़े हो जाने पर रसखान ने गोपियों की प्रेमपूर्ण फटकार से भरी कैसी अनोखी उक्ति की कल्पना की है—

दानी भये नये मांगत दान सुनै जो पै कंस तौ बांधि कै जैहौ।

रोकत हौ बन में 'रसखानि' पसारत हाथ घनौ दुख पैहौ ॥
टूटे छरा बछरादिक गोधन जो धन है सो सबै धन दैहौ ।
जैहै अभूषन काहू सखी को तो मोल छला के लला न बिकैहौ ॥

कहां तक कहा जाय इस प्रकार की सरस उक्तियां उनके काव्य में भरी पड़ी हैं। केशवदास ऐसे महाकवि अलंकारों के बल पर चमत्कार तो खूब पैदा कर सके किंतु रसखान जैसा निरीक्षण उन्हें नहीं मिला था, जिससे उनके काव्य में वह सरसता तथा आकर्षण-शक्ति नहीं आ सकी जो रसखान के सवैयों में आ गई है।

अंतर्मुखी तथा बहिर्मुखी कवि : कवियों का एक प्रकार का वर्गीकरण अंतर्मुखी और बहिर्मुखी नाम से भी किया जाता है। आंतरिक भावों की व्यंजना करने वाले तथा उन भावों द्वारा हृदय पर पड़ने वाले प्रभाव का वर्णन करने वाले अंतर्मुखी कवि कहलाते हैं। ऐसे कवि अंतस्तल के भावों की छान-बीन में ही अधिक रहते हैं। बहिर्मुखी कवि किसी रूप या घटना का प्रभाव बाह्य स्थिति पर क्या पड़ा, यह दिखलाते हैं। वे बाह्य चेष्टाओं के वर्णन तथा कथन द्वारा ही काव्य में सरसता ले आते हैं। रसखान इसी दूसरी कोटि के कवि थे। ये अंतर्वृत्तियों की छान-बीन तथा उनके चित्रण में नहीं लगे। इन्होंने प्रत्यक्ष दर्शित होने वाले बाह्य रूपों के चित्रण में ही अपनी कुशलता दिखाई है। अंतर्वृत्तियों को टटोलने वाले तथा उनकी गहराई तक पहुँचने वाले सूरदास तथा घनानंद आदि थे। इन दो शैलियों में कौन श्रेष्ठ है, यह नहीं कहा जा सकता। दोनों में समान शक्ति है। क्षमताशील कवि चाहे किसी भी—अंतर्मुखी अथवा बहिर्मुखी—शैली को ग्रहण कर सुंदर रसमय काव्य की सृष्टि कर सकता है। सूरदास, घनानंद को जो सफलता अंतर्मुखी काव्य से मिली है, वही सफलता रसखान को बहिर्मुखी काव्य से मिली है। रसखान ने कृष्ण के हृदयगत गुणों का वर्णन अधिक नहीं किया, प्रत्युत उनकी रूप-छटा का ही अधिक चित्रण किया है। रसखान की गोपियां कृष्ण की हृदयगत विशेषताओं या गुणों पर नहीं रीझी थीं। वे बाह्य उपकरण अर्थात् कृष्ण की तिरछी चितवन, बाँकी अदा तथा मुरली की मधुर ध्वनि पर न्यौछावर थीं। रसखान ने कृष्ण का हृदय-सौंदर्य व्यक्त करने का उतना प्रयत्न नहीं किया जितना प्रयत्न उनके रूप-सौंदर्य को स्पष्ट करने का किया है। रसखान के

किसी भी छंद को ले लीजिए, उसमें मनोभावों की अपेक्षा बाह्य चेष्टाएं ही अधिक दिखाई देंगी। उदाहरण के लिए दो-एक सवैये देखिए—

लोक की लाज तजी तबहीं जब देख्यो सखी ब्रजचंद सलोनो।
खंजन मीन सरोजन की छबि गंजन नैन लला दिन होनो॥
'रसखानि' निहारि सकै जु सम्हारि कै को तिय है, वह रूप सुठोनो।
भौंह कमान सों जोहन को सर, बेधत प्रानन नंद को छौनो॥

निम्नांकित सवैये में कृष्ण की बंक विलोकन, खरी मुसकान, अमीनिधि बैन तथा बाँसुरी की टेर के द्वारा गोपियों को अपनाने का कैसा सुंदर चित्रण है। इसमें कृष्ण के सभी बाह्य कार्य-व्यापार हैं—

बाँकी बिलोकनि रंग भरी 'रसखानि' खरी मुसकानि सुहाई।
बोलत बैन अमीरस दैन महारस ऐन सुने सुखदाई॥
सजनी बन में पुर बीथिन में पिय गोहन लागि फिरौं मैं री माई।
बाँसुरी टेर सुनाइ अली अपनाइ लई ब्रजराज कन्हाई॥

इस बाह्य सौंदर्य के चित्रण करने का कारण कदाचित् यह हो सकता है कि भक्त होने के पूर्व ये रूप-सौंदर्य के पुजारी थे। कृष्ण की ओर इनका मन भी फिरा था तो उनके स्वरूप की छटा ही देखकर, अतः बहुत संभव है कि इसीलिये रूप-वर्णन में इनका मन अधिक लगा हो।

नहीं है। कृष्ण के वृंदावन छोड़कर मथुरा में रहने के दो ही चार छंद हैं। गोपियों की व्याकुलता का कारण कृष्ण की छवि से उन्हें मिलता हुआ आनंद ही है। सूरदास की गोपियों की भाँति रसखान की गोपियां—

मधुवन तुम कत रहत हरे।
बिरह-वियोग स्यामसुंदर के ठाढ़े क्यों न जरे ॥......

अथवा 'निसि दिन बरसत नैन हमारे' नहीं कहतीं। रसखान के पीछे घनानंद अच्छे कवि हुए हैं, जिन्होंने गोपियों की विरह-व्यथा को चरम सीमा पर पहुँचा दिया। घनानंद की गोपियां कहती हैं—

बिरह-बिथा की मूरि आँखिन मैं राखौं पूरि,
धूरि तिन्ह पायन की हा हा नैकु आनि दै।

*

मूरति मया की हा हा सूरति दिखैये नैकु
हमैं खोय या बिधि हो कौन धौं लहा लहौ।

*

तथा सलोने स्याम प्यारे क्यों न आवौ। दरस प्यासी मरैं तिनको जियावौ ॥

रसखान की सखियों पर अभी इतना संकट नहीं पड़ा कि कृष्ण-दर्शन को असंभव समझकर उनके पैरों की धूलि से ही संतोष करने की लालसा करें। वे तो कृष्ण की छेड़खानी से ही परेशान हैं। रसखान के मन में वियोगपक्ष की भावना जगी ही नहीं, वे तो आनंद में मग्न करने वाला आनंदमय काव्य रचना चाहते थे। कहीं-कहीं वियोग-व्यथा का वर्णन करते-करते सहसा संयोगपक्ष में आ गये हैं। पूरे एक सवैया में भी विरह-वर्णन का निर्वाह न कर सके। वह सवैया देखिए—

'रसखानि' सुन्यो है वियोग के ताप मलीन महा दुति देह तिया की।
पंकज सो मुख गो मुरझाइ लगैं लपटैं बिरहागि हिया की ॥
ऐसे में आवत कान्ह सुने, हुलसी सुतनी तरकी अँगिया की।
यों जग जोति उठी तन की उसकाइ दई मनौ बाती दिया की ॥

कृष्ण-विरह में गोपी की बुरी गति हो गई थी, किंतु सहसा कृष्ण का आग-

तान सुनकर उसकाई हुई दीपक की बत्ती के समान उसके शरीर में ज्योति जग उठी और प्रसन्न हो गई। संयोग और सुख-पक्ष की रसखान में जितनी प्रधानता है, उतनी ही प्रधानता घनानंद में वियोग और दुःख-पक्ष की है। रसखान और घनानंद के जीवन-चरित्र में भी कुछ ऐसा ही अंतर है। रसखान को जब शोभा-सागर कृष्ण से प्रेम हो गया था तब उन्होंने अपनी मानिनी या वैश्यपुत्र का साथ छोड़ा; किंतु घनानंद का जब उनकी प्रेमिका सुजान से वियोग हो गया तब कृष्ण के प्रति उनका प्रेम बढ़ा। घनानंद को भक्त होने पर भी, सुजान के विरह की लपटें कभी-कभी लग जाया करती थीं, और रसखान तो संपूर्ण रसों की खान आनंद-निधान श्रीकृष्ण को ही पा गये थे, फिर उन्हें वियोग कैसे सूझता ? दोनों कवियों के दो-दो सवैये यदि देख लिये जाँय तो अंतर स्पष्ट हो जायगा। घनानंद का वर्णन देखिए—

रंग लियौ अबलान के अंग तें च्वाय कियौ चित चैन कौ चोवा ।
और सबै सुख सौंधे सकेल सनाय दियौ 'घन आनद' होवा ॥
प्रान अधीनहिं ऐंठ भरे अति झाक्यौ फिरै मति की गति खोवा ।
स्याम सुजान बिना सजनी ब्रज यौं बिरहा भयौ फाग बिगोवा ॥

आवत लाल गुपाल लिये मग, सूने मिली इक नार नवीनी ।
त्यों 'रसखानि' लगाइ हिये भटू मौज कियो मन माहिं अधीनी ।।
सारी फटी सुकुमारी हटी अँगिया दरकी सरकी रँगभीनी ।
गाल गुलाल लगाइ, लगाइ कै अंक, रिझाइ विदा कर दीनी ।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रसखान मधुर तथा आनंद पक्ष के कितने प्रेमी और पोषक थे । गोपियों का हाय-हाय वाला रूप इन्होंने नहीं लिया ।

परिस्थिति-निर्माण : काव्य में परिस्थिति (Atmosphere) का बहुत व्यापक प्रभाव पड़ता है । वर्णन का आकर्षक, प्रभावशाली, सरस अथवा फीका होना उसकी परिस्थितियों पर निर्भर है । प्रेम-चित्र के लिये प्रेममय सुंदर तथा मधुर परिस्थिति का निर्माण करना आवश्यक है । वीररस उत्पन्न करने के लिये उसके अनुकूल परिस्थिति तैयार करनी पड़ती है । काव्य ही क्या भाषण में भी वक्ता अपनी बात कहने के पूर्व बातों द्वारा वैसी परिस्थिति का निर्माण कर लेता है, लेखक भी भूमिका में यही कार्य करता है । बिना परिस्थिति के चित्र अधूरा लगता है, उसमें रसोद्रेक की शक्ति नहीं होती । विशेषकर बहिर्वृत्ति वाले बिना इसके सफल हो ही नहीं सकते । बहिर्मुखी कवियों का मुख्य साधन, मुख्य आधार तथा मुख्य बल परिस्थित्ति-सृजन ही है । जिन कवियों से यह नहीं हो सका उनकी कविता निम्नकोटि में जाकर साहित्य-संसार से दूर जा पड़ी और जिन्होंने इसका उपयोग किया, वे अब भी अपनी रचनाओं के साथ सहृदय पाठकों द्वारा स्मरण किये जाते हैं । कहने की आवश्यकता नहीं कि यह शक्ति रसखान में अत्यधिक मात्रा में थी । उन्होंने भाव के अनुकूल ऐसी परिस्थिति खड़ी की है जिससे उनकी रचना में बड़ी प्रभावोत्पादकता आ गई है । इनके पास यही तो एक विशेष शक्ति थी । इसी विशेषता के कारण अत्यंत प्राचीन-काल से कही आती हुई बातें भी इनकी कविता में आकर पिष्टपेषित नहीं विदित होतीं, उनमें एक नवीनता तथा आकर्षण आ गया है । परिस्थिति का प्रभाव इस बात से भलीभाँति समझा जा सकता है कि नाटक या सिनेमा में किसी विशेष घटना के अनंतर, विशेष परिस्थिति में गाया हुआ गान कितना भला मालूम पड़ता है ? किंतु जब उसी को हम अपने घर आकर गाने लगते हैं तो उसमें वह सरसता, वह प्रभाव

प्रवृत्ति वाले कवि तो वे होते हैं जो असामान्य दृश्यों पर ही दृष्टि डालते हैं। जिन दृश्यों पर सर्वसाधारण की दृष्टि नहीं जाती, उनका समावेश करके वे काव्य को प्रभावशाली बनाना चाहते हैं। ऐसे कवियों का कहना है कि जिस दृश्य को साधारण लोग देख रहे हैं या जान रहे हैं, उसका चित्रण करना कोई कला नहीं है, उसमें कवि की शक्ति का पता नहीं चलता तथा वह उतना प्रभावशाली भी नहीं हो सकता। इसके विपरीत जो दृश्य सर्वसाधारण की दृष्टि से परे हैं, उनके चित्रण में ही कवि-कला है और उन्हीं में प्रभाव भी है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ जी के पितामह नारायणकृति का तो यह सिद्धांत था कि काव्य में चमत्कार ही प्रधान है। वे चमत्कार को ही रस मानते थे। किंतु ध्यान देने की बात है कि चमत्कार-प्रधान काव्य में अनुभूति की दोहरी धारा बहती है। हृदय एक समय में एक ही रस का अनुभव कर सकता है, यदि काव्य के नौ रसों में से किसी एक रस के साथ-साथ उसमें चमत्कार भी है तो आश्चर्य का भी अनुभव करना पड़ता है। इससे हृदय पर एक प्रकार का बोझ-सा पड़ता है और मुख्य रस की अनुभूति में व्याघात पहुँचता है। यदि कहीं चमत्कार की मात्रा अधिक हुई तो मुख्य रस दब जाता है और आश्चर्य ही आश्चर्य का अनुभव होने लगता है। ऐसी दशा में पाठक मुँह फैलाकर चकित होकर रह जाता है। ध्यान देने की बात है कि इस प्रकार बीच-बीच में आश्चर्य-चकित होना कहां तक अच्छा है? आश्चर्य उत्पन्न करने वाले काव्य को काव्य न कहकर जादू का पिटारा कहें तो अधिक अच्छा है, क्योंकि जादू के प्रत्येक खेल को देखकर दर्शक मुँह बा देता है।

इस चमत्कारवाद को रसखान ने भ्रामक सिद्ध कर दिया। केवल बातों से ही नहीं, वरन् अपने कवि-कर्म से प्रत्यक्ष दिखा दिया कि रसोत्पत्ति के लिये चमत्कार अनिवार्य नहीं है। रसखान के सवैयों में कोई चमत्कार नहीं है, फिर भी उनसे रस टपका पड़ता है। महाचमत्कारवादी केशव की कविता को निचोड़ने से भी रस नहीं निकलता, हाथों में पानी लगाकर निचोड़ें तो दो-एक बूंद टपक पड़े तो टपक पड़े।

असामान्य दृश्यों को चुनने वाले कवियों की बात हो चुकी, अब कुछ कवि ऐसे होते हैं जो सामान्य दृश्यों को ही ग्रहण करते हैं। प्रायः अच्छे कवि इसी

नहीं रह जाता। रसखान के एक सवैया को देखिए, उन्हें केवल यह कहना था कि कृष्ण आ रहे हैं, कितनी सीधी-सी बात है। मूलरूप में इसमें कोई प्रभाव नहीं, कोई रस नहीं, क्योंकि बहुत समय बाद कहीं बाहर से नहीं आ रहे हैं, ऐसी बात होती तो उसका महत्व अवश्य होता, किंतु कृष्ण साधारण रूप से आ रहे हैं या कहिए कि रोज़ की तरह गुज़र रहे हैं। इसी सीधी-सी बात को रसखान ने परिस्थिति तैयार करके कितना सरस तथा मधुर बना दिया है, उसे देखिए—

गोरज बिराजै भाल लहलही बनमाल
आगे गैया पाछे ग्वाल गावै मृदुतान री।
जैसी धुनि बाँसुरी की मधुर मधुर तैसी
बंक चितवनि मंद मंद मुसकानि री॥
कदम बिटप के निकट तटनी के आय
अटा चढ़ि चाहि पीतपट फहरानि री।
रस बरसावै, तन तपन बुझावै नैन–
प्राननि रिझावै वह आवै 'रसखानि' री॥

मुख्य बात को अंत तक छिपाकर पहले कैसी सुंदर परिस्थिति तैयार की, जिसके माधुर्य की ओर पाठक या श्रोतागण आकर्षित हो जाते हैं, फिर अंत में 'वह आवै रसखानि री' के आते ही वे मग्न होकर झूम पड़ते हैं। यह परिस्थिति वाला प्रभाव सभी स्थलों पर लक्षित होता है, अतः और उदाहरण देना अनुपयुक्त है। साधारण से साधारण बात में भी ये कितना रस ला देते हैं, इसके प्रमाण में यही एक सवैया पर्याप्त है।

दृश्य-चुनाव : स्थितियां अनेक होती हैं, अतः उनके चुनाव में ही कवि की प्रतिभा का परिचय मिलता है। किन स्थितियों के चित्रण से इष्टभाव पूर्णरूप से व्यक्त होकर सरस हो जायगा, इसका विचार करना कवि का प्रथम कर्तव्य है। अनावश्यक दृश्यों के वर्णन से भाव में वह रस नहीं आ सकता। रसखान परिस्थिति के चुनाव में बड़े पटु थे। वे भलीभाँति जानते थे कि कौन-सी स्थितियां अपने काम की हैं।

परिस्थितियों के चुनने में कवियों की प्रवृत्ति दो प्रकार की देखी जाती है। एक

प्रवृत्ति वाले कवि तो वे होते हैं जो असामान्य दृश्यों पर ही दृष्टि डालते हैं। जिन दृश्यों पर सर्वसाधारण की दृष्टि नहीं जाती, उनका समावेश करके वे काव्य को प्रभावशाली बनाना चाहते हैं। ऐसे कवियों का कहना है कि जिस दृश्य को साधारण लोग देख रहे हैं या जान रहे हैं, उसका चित्रण करना कोई कला नहीं है, उसमें कवि की शक्ति का पता नहीं चलता तथा वह उतना प्रभावशाली भी नहीं हो सकता। इसके विपरीत जो दृश्य सर्वसाधारण की दृष्टि से परे हैं, उनके चित्रण में ही कवि-कला है और उन्हीं में प्रभाव भी है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ जी के पितामह नारायणकृति का तो यह सिद्धांत था कि काव्य में चमत्कार ही प्रधान है। वे चमत्कार को ही रस मानते थे। किंतु ध्यान देने की बात है कि चमत्कार-प्रधान काव्य में अनुभूति की दोहरी धारा बहती है। हृदय एक समय में एक ही रस का अनुभव कर सकता है, यदि काव्य के नौ रसों में से किसी एक रस के साथ-साथ उसमें चमत्कार भी है तो आश्चर्य का भी अनुभव करना पड़ता है। इससे हृदय पर एक प्रकार का बोझ-सा पड़ता है और मुख्य रस की अनुभूति में व्याघात पहुँचता है। यदि कहीं चमत्कार की मात्रा अधिक हुई तो मुख्य रस दब जाता है और आश्चर्य ही आश्चर्य का अनुभव होने लगता है। ऐसी दशा में पाठक मुँह फैलाकर चकित होकर रह जाता है। ध्यान देने की बात है कि इस प्रकार बीच-बीच में आश्चर्य-चकित होना कहां तक अच्छा है? आश्चर्य उत्पन्न करने वाले काव्य को काव्य न कहकर जादू का पिटारा कहें तो अधिक अच्छा है, क्योंकि जादू के प्रत्येक खेल को देखकर दर्शक मुँह बा देता है।

इस चमत्कारवाद को रसखान ने भ्रामक सिद्ध कर दिया। केवल बातों से ही नहीं, वरन् अपने कवि-कर्म से प्रत्यक्ष दिखा दिया कि रसोत्पत्ति के लिये चमत्कार अनिवार्य नहीं है। रसखान के सवैयों में कोई चमत्कार नहीं है, फिर भी उनसे रस टपका पड़ता है। महाचमत्कारवादी केशव की कविता को निचोड़ने से भी रस नहीं निकलता, हाथों में पानी लगाकर निचोड़ें तो दो-एक बूंद टपक पड़े तो टपक पड़े।

असामान्य दृश्यों को चुनने वाले कवियों की बात हो चुकी, अब कुछ कवि ऐसे होते हैं जो सामान्य दृश्यों को ही ग्रहण करते हैं। प्रायः अच्छे कवि इसी

प्रकार के होते हैं। ऐसे कवि कहते हैं कि जिन दृश्यों पर सर्वसाधारण की दृष्टि जाती है, यदि उन्हीं का वर्णन कलापूर्ण किया जाय तो पाठकों की समझ में शीघ्र आयेंगे और उनका प्रभाव भी अधिक पड़ेगा। अपरिचित दृश्यों के रखने से संभव है पाठक उन्हें समझने में उलझ जाँय और शीघ्र रस की अनुभूति न प्राप्त कर सकें। क्या कारण है कि सब की दृष्टि में आने वाले सामान्य दृश्य भी प्रभावशाली तथा सरस हो जाते हैं? बात यह है कि सामान्य दृश्यों का भी कवि ऐसा विधान करता है कि उनमें आकर्षण आ जाता है। कवि की योजना ही सफलता का कारण है। सामान्य दृश्यों का चित्रण करते समय कवि सोचता है कि इन दृश्यों पर सर्वसाधारण की दृष्टि पड़ी तो है, किंतु सब इनके सौंदर्य को समझ नहीं सके। अतः वे इन सामान्य दृश्यों के अपूर्व सौंदर्य पर प्रकाश डालते हैं।

रसखान की रचना पर ध्यान देने से स्पष्ट हो जाता है कि सामान्य और विशेष दो प्रकार के दृश्यों द्वारा परिस्थिति-निर्माण करने वाले कवियों में रसखान प्रथम कोटि के कवि हैं। इनकी रचना का आनंद लेने के लिये पांडित्य की आवश्यकता नहीं है। अल्प शिक्षित, स्त्री, पुरुष, युवक, वृद्ध तथा पंडित सभी प्रकार के लोग इनके काव्य का रसास्वादन कर सकते हैं। प्रवाहमय तथा सरल भाषा के साथ-साथ इनके दृश्य सर्वसाधारण से परिचित होते हैं, यही इनके काव्य की मुख्य विशेषता है।

रचना का वर्गीकरण : विषय के अनुसार इनकी रचना तीन दृष्टिकोणों का एक त्रिभुज बनाती है, तीन पक्ष स्पष्ट लक्षित होते हैं। इनकी रचना का एक भाग ऐसा है जिसमें रसखान एक शुद्ध भक्त के रूप में अपने इष्टदेव की प्रशंसा या प्रार्थना करते पाये जाते हैं। इसी में पाठकों को उपदेश भी दिया गया है कि यदि कृष्ण से प्रेम नहीं तो संसार के सारे वैभव व्यर्थ हैं, अतः कृष्ण से प्रेम करो। 'प्रेमवाटिका' भी इसी के अंतर्गत आ जाती है, क्योंकि इन्होंने प्रेम को भक्ति का ही स्वरूप दिया है। भगवान की भक्तवत्सलता पर विश्वास के छंद भी इसी में आयेंगे, जैसे—

बाँसुरीवारो बड़ो रिझवार है, पीर हमारे हिये की हरैगो।

रसखान की स्वाभिलाप भी इसी वर्ग में आयेगी जैसे—

'मानुष हौं तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन'...आदि। इस वर्ग में लगभग दस सवैये हैं, जिनमें कृष्ण तथा गोपियों के प्रेम की व्यंजना नहीं है और न कृष्ण का रूप ही वर्णित है। इनमें कृष्ण को परात्पर ब्रह्म मानकर उन्हें पतित-पावन समझकर उनका गुण गाया गया है। रसखान ने अपने अस्तित्व का कृष्ण में लय करने की अभिलाष प्रकट करके अपनी भक्ति का परिचय दिया है। ये ही सवैये रसखान को भक्त-कवियों की पंक्ति में निःसंकोच ला खड़ा करते हैं। इन्हींके आधार पर रसखान को भक्त मान लेने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होती।

रचना का दूसरा दृष्टिकोण वह है जिसमें कृष्ण के रूप-माधुर्य का वर्णन किया गया है और जिसमें कृष्ण-लीलाओं का भी वर्णन है। इन छंदों में अवश्य कुछ शृंगारिकता आ गई है, जो ऐसे विषय के लिये अनिवार्य है। कृष्ण-छवि-वर्णन में तो रसखान का सौंदर्य-प्रेम झलकता है, किंतु जहां कृष्ण की छेड़-छाड़ अथवा उनके उत्पातों का वर्णन है वहां शृंगार की भावना ही पुष्ट होती है। फिर भी कृष्ण-काव्य के अनेक कवियों की भाँति इनका शृंगार अश्लीलता को नहीं प्राप्त होने पाया, इनका शृंगार सीमा के भीतर ही है।

परमानँद प्रभु सुरति समय रस मदन नृपति की सेना लूटी।

अथवा हितहरिवंश सुनि लाल लावण्य भिदे प्रिया अतिसूर सुख-सुरत संग्रामिनी। की भाँति रसखान का शृंगार-वर्णन नहीं है। उनकी दृष्टि सुरत ऐसे घोर शृंगारिक वर्णनों की ओर नहीं गई। रसखान के शृंगार में यही विशेषता है कि उसमें लौकिक पक्ष थोड़ा और आध्यात्मिक पक्ष अधिक है। इनके गोपी-कृष्ण सांसारिक नायिका-नायक-से नहीं लगते, वरन् उनमें कुछ देवत्व की झलक सदा और सर्वत्र लक्षित होती रहती है।

तीसरे वर्ग में ऐसे छंद हैं जिनमें गोपियों की कृष्ण-दर्शन की आकुलता तथा प्रेम-पीर की व्याकुलता का वर्णन है। काव्य-प्रक्रिया की दृष्टि से ये अवश्य शृंगारी कहे जा सकते हैं, किंतु साथ ही साथ भक्ति-पक्ष में भी जा सकते हैं। रसखान का ऐसा एक भी छंद कदाचित् न मिलेगा जिसमें केवल शृंगार-पक्ष हो। यदि शुद्ध भक्ति-पक्ष का न होगा तो दोनों ओर उसका संकेत अवश्य होगा। बिहारी के दोहों में

रहता है वह अशुद्ध है, और जो प्रेम सहज तथा स्वाभाविक होता है वह शुद्ध है—

स्वारथ मूल अशुद्ध त्यों, शुद्ध स्वभावऽनुकूल ।
नारदादि प्रस्तार करि, कियो जाहि को तूल ॥

'नारदादि प्रस्तार करि' से स्पष्ट लक्षित होता है कि रसखान ने 'नारद पंचरात्रि' तथा 'शांडिल्य सूत्र' अवश्य पढ़ा होगा । इन दो ग्रंथों में प्रेम की बड़ी विषद व्याख्या तथा सविस्तार सांगोपांग निरूपण है । 'नारद पंचरात्रि' के शुद्धाशुद्ध प्रेम की ओर ही रसखान ने संकेत किया है ।

रसखान ने प्रेम-मार्ग को सीधा भी कहा है और टेढ़ा भी । कमलनाल से भी क्षीण तथा खड्ग की धार से भी कराल बतलाते हैं । इनके यह कहने का रहस्य यही हो सकता है कि एकांगी, सहज तथा स्वाभाविक प्रेम होना सरल नहीं है बड़ा दुर्लभ है । यदि हुआ भी तो उसका अंत तक निर्वाह करना बड़ा कठिन है । बीच में तनिक भी मार्ग से हटे या भावना में तनिक भी शिथिलता आई कि दोनों दीन से गये, विषयानंद या ब्रह्मानंद कुछ भी प्राप्त न हो सकेगा, इसीसे यह टेढ़ा और खड्ग की धार है । सीधा तथा कमलनाल से भी क्षीण इसलिये है, कि है तो मन मानने की ही बात । मन में बैठ गई तो बैठ गई, चित्त पलट गया तो पलट गया । प्रेम-प्राप्त करने के लिये तप या योग की भाँति किसी दुष्कर साधना की आवश्यकता नहीं है, हृदय को समझाने की बात है । यदि एकबार आपके हृदय में प्रेम उत्पन्न हो गया और आनंद मिलने लगा तो उत्तरोत्तर उसकी वृद्धि होती जायगी । ज्यों-ज्यों आनंद बढ़ेगा त्यों-त्यों प्रेम दृढ़ होगा और ज्यों-ज्यों प्रेम दृढ़ होता जायगा, आनंद में वृद्धि होती जायगी । रसखान ने कहा है—

कमल तंतु सो छीन अरु, कठिन खड्ग की धार ।
अति सूधो टेढ़ो बहुरि, प्रेम - पंथ अनिवार ॥

रसखान के लगभग सौ वर्ष बाद ब्रजभाषा के अनोखे तथा उद्भट कवि घनानंद हुए हैं, जिन्होंने प्रेम का मार्ग अत्यंत सीधा बतलाया है । उन्हें प्रेम में तनिक भी सयानापन या बाँकपन नज़र नहीं आया । वे प्रेम की सिधाई को बतलाकर कृष्ण को उपालंभ देती हुई गोपियों से कहलाते हैं—

अति सूधो सनेह को मारग है जहँ नैकु सयानप बाँक नहीं।
तहँ साँचे चलैं तजि आपनपौ, झिझकैं कपटी जो निसाँक नहीं॥
'घन आनंद' प्यारे सुजान सुनौ इत एक ते दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन सी पाटी पढ़े हौ लला मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं॥

मन लेकर छटाँक भी न देने का भाव रसखान का ही है, ठीक इसी आशय का निम्नाङ्कित दोहा रसखान का है—

मन लीनो प्यारे चितै, पै छटाँक नहिं देत।
यहै कहा पाटी पढ़ी, दल को पीछो लेत॥

रसखान के समान घनानंद ने प्रेम-मार्ग को टेढ़ा तथा खड्ग की कठिन धार नहीं कहा, वे उसे अत्यंत सरल मानते हैं। देखने में तो दोनों कवियों में प्रत्यक्ष अंतर मालूम होता है किंतु ध्यान देने से यह स्पष्ट हो जायगा कि रसखान ने जिस विषय की कठिनता या सरलता को बताया है, उस विषय में घनानंद कुछ भी नहीं कहते। उनका विषय ही दूसरा है। रसखान ने प्रेम-प्राप्ति की साधना को सरल तथा कठिन दोनों कहा है और घनानंद साधना की कोई चर्चा नहीं करते। उनका कहना है कि प्रेम-मार्ग में चतुराई के लिये कोई स्थान नहीं है, उसमें सिधाई और स्वच्छ हृदय की ही आवश्यकता है। रसखान का टेढ़ापन साधना की कठिनता है और घनानंद का बाँकपन चतुराई या कपट है। प्रेम-प्राप्ति की साधना की कठिनता या सरलता के विषय में घनानंद का क्या मत है, इसका उन्होंने कहीं उल्लेख नहीं किया।

घनानंद के लगभग पचास वर्ष पीछे बोधा नाम के एक प्रसिद्ध और भावुक कवि हुए हैं, जिन्होंने प्रेम-मार्ग को रसखान की भाँति महा कराल, तलवार की धार तथा मृनाल के तार से भी क्षीण कहा है, किंतु सीधा नहीं कहा। इनका मत घनानंद के बिल्कुल प्रतिकूल है। घनानंद ने कहा 'अति सूधो सनेह को मारग है' तो बोधा ने कहा 'प्रेम को पंथ कराल महा'। बोधा का सवैया देखिए—

अति खीन मृनाल के तारहु ते तेहि ऊपर पाँव दै आवनो है।
सुई-बेह ते द्वार सँकीन तहां परतीत को टाँड़ो लदावनो है॥
कवि बोधा अनी घनी नेजहु ते चढ़ि तापै न चित्त डरावनो है।

यह प्रेम को पंथ कराल महा तरवारि की धार पै धावनो है ॥

रसखान ने शुद्ध प्रेम की पहचान भी बताई है। वे कहते हैं कि जिस प्रेम के प्राप्त होने पर वैकुंठ या ईश्वर की भी इच्छा न रह जाय, उसे शुद्ध प्रेम समझना चाहिए—

जेहि पाये बैकुंठ अरु, हरिहू की नहिं चाहि।
सोइ अलौकिक, सुद्ध, सुभ, सरस, सुप्रेम कहाहि॥

और भी लक्षण बताते हैं—

डरै सदा, चाहै न कछु, सहै सबै जो होय।
रहै एकरस चाहि कै, प्रेम बखानौ सोय॥

केवल दो मनों को मिलाने वाले प्रेम से रसखान संतुष्ट नहीं थे। उनके प्रेम का स्वरूप तब खड़ा होता है जब दो मनों के साथ-साथ दोनों तन भी मिल जाँय। यह प्रेम-दशा की चरम सीमा है, जो लौकिक पक्ष में या इस लोक में संभव नहीं है। इसके लिये लोक, प्राण, शरीर सब कुछ छोड़ना पड़ेगा, क्यों कि प्रेम की ममता तन की ममता से कहीं अधिक होती है—

जग मैं सब तें अधिक अति, ममता तनहिं लखाय।
पै या तनहूं ते अधिक, प्यारो प्रेम कहाय॥

रसखान कहते हैं कि दो मनों को एक होते बहुत देखा सुना जाता है, किंतु वह प्रेम का सच्चा रूप नहीं है। सर्वोत्तम प्रेम वही है जब दो तन एक हो जायँ।

दो मन इक होते सुन्यो, पै वह प्रेम न आहि।
होइ जबै द्वै तनहुं इक, सोई प्रेम कहाहि॥

और इस प्रेम के उदाहरण-स्वरूप उन्होंने लैला-मजनूं के प्रेम को रक्खा है। लैली के प्रेम की प्रशंसा करते हुए कहते हैं—

अकथ कहानी प्रेम की, जानत लैली खूब।
दो तनहूं जहं एक भे, मन मिलाइ महबूब॥

केवल लैला-मजनूं के प्रेम की चर्चा करके ही रसखान ने अपने कर्तव्य की इति नहीं समझी। वे इतने से संतुष्ट न हो सके। उनके ध्यान में आया कि कृष्ण-प्रेमियों का दृष्टांत दिये बिना विषय अधूरा ही रहेगा, अतः इस प्रेम-दशा को प्राप्त

करने वालों का वर्णन किया—

जदपि जसोदा नंद अरु, ग्वालबालि सबै धन्य।
पै या जग में प्रेम को, गोपी भई अनन्य ॥

वास्तव में गोपियों के प्रेम को समझना भी किसी विरले अनन्य प्रेमी का ही काम है। गोपियों के प्रेम के आगे ग्वालबाल, नंद, यशोदा यहां तक कि स्वयं कृष्ण का प्रेम भी फीका पड़ जाता है। रसखान को पूरा विश्वास था कि उस प्रेम-रस का स्वाद अब संसार में किसी को प्राप्त नहीं हो सकता, इसीलिये वे कहते हैं—

या रस की कछु माधुरी, ऊधो लही सराहि।
पावै बहुरि मिठास अस, अब दूजो को आहि ॥

'प्रेम में नेम नहीं' यह प्रसिद्ध कहावत है। इसी मत के मानने वाले रसखान भी थे। नियम तो वहीं होता है जहां प्रेम के लिये कोई कारण अपेक्षित रहता है किंतु शुद्ध और सहज प्रेम में नियमों का पालन हो ही कैसे सकता है? लोक-मर्याद तथा नियमों की तो बात ही क्या वेद-मर्याद को भी एक ओर रख देना पड़ता है—

लोक वेद मरजाद सब, लाज काज संदेह।
देत बहाये प्रेम करि, विधि निषेध को नेह ॥

गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'ज्ञानहि भक्तिहि नहिं कछु भेदा' कहकर अपना मत प्रकट कर दिया है कि ज्ञान और भक्ति में कोई विशेष अंतर नहीं है। गीता में कर्मयोग प्रधान कहा गया है। किंतु रसखान की दृष्टि में ज्ञान, कर्म और उपासना तीनों से प्रेम श्रेष्ठ है, ये प्रेम की ही प्रधानता स्वीकार करते हैं—

ज्ञान कर्मऽरु उपासना, सब अहिमिति को मूल।
दृढ़ निश्चय नहिं होत बिन, किये प्रेम अनुकूल ॥

कोरे ज्ञानियों और शास्त्रज्ञों को कबीर की भाँति रसखान ने भी फटकार बताई है। प्रेम के साथ यदि ज्ञान भी हो तब तक तो कोई हानि नहीं किंतु बिना प्रेम का ज्ञान किसी काम का नहीं है।

भले वृथा करि पचि मरौ, ज्ञान-गरूर बढ़ाय।

बिना प्रेम फीकौ सबै, कोटिन किये उपाय ॥
शास्त्रन पढ़ि पंडित भये, कै मोलवी कुरान।
जु पै प्रेम जान्यो नहीं, कहा कियो 'रसखान' ॥

प्रेम के झोंके में ये यहां तक कह गये हैं—

ज्ञान, ध्यान, विद्या, मती, मत, विश्वास, विवेक।
बिना प्रेम सब धूर हैं, अग जग एक अनेक ॥

'अनबूड़े-बूड़े' वाला बिहारी का विरोधाभास-भाव का दोहा, रसखान प्रेम के विषय में पहले ही कह गये हैं—

प्रेम-फाँस मैं फँसि मरै, सोई जिये सदाहिं।
प्रेम-मरम जाने बिना, मरि कोऊ जीवत नाहिं ॥

शुद्ध प्रेम का हृदय के अन्य विकारों से बड़ा विरोध है। किसी एक भी विकार के रहते हुए हृदय में शुद्ध प्रेम नहीं टिक सकता, साथ ही हृदय में शुद्ध प्रेम की स्थापना हो जाने से फिर कोई विकार नहीं टिक सकता। रसखान ने मुनिवरों का प्रमाण देकर इस बात को कहा है कि प्रेम सब विकारों से रहित होता है—

काम, क्रोध, मद, मोह, भय, लोभ, द्रोह, मात्सर्य।
इन सब ही तें प्रेम है, परे, कहत मुनिवर्य ॥

यह जीवन-मुक्त की अवस्था है, तभी तो प्रेम और हरि में कोई अंतर नहीं कहा। यदि प्रेम रहते हुए भी ये विकार रहें तो हरि भी सविकार हो जायँगे। प्रेम को हरि का स्वरूप देते हुए कहते हैं—

प्रेम हरी को रूप है, त्यों हरि प्रेम स्वरूप।
एक होइ द्वै यों लसैं, ज्यों सूरज अरु धूप ॥

इतना ही नहीं, प्रेम को हरि से भी श्रेष्ठ ठहराया है क्योंकि सृष्टि को अपने आधीन रखने वाले हरि भी इसके आधीन रहते हैं—

हरि के सब आधीन पै, हरी प्रेम - आधीन।
याही ते हरि आपुही, याहि बड़प्पन दीन ॥

'वेदोखिलोधर्म मूलं' अर्थात् समस्त धर्मों का मूल वेद है, इस बात की ओर

संकेत करते हुए रसखान कहते हैं कि प्रेम धर्म से भी श्रेष्ठ है। प्रेम के इस गूढ़ निरूपण से विदित होता है कि उनका अध्ययन भी किसी मात्रा में अच्छा था। रसखान कहते हैं—

वेद मूल सब धर्म यह, कहैं सबै श्रुतिसार।
परम धर्म है ताहु तें, प्रेम एक अनिवार॥

इतना ही नहीं, वेद-पुराणों का मूलतत्त्व भी प्रेम ही है—

श्रुति, पुरान, आगम, स्मृतिहि, प्रेम सबहि को सार।
प्रेम बिना नहिं उपज हिय, प्रेम बीज अँकुवार॥

रसखान ने भारतीय प्रेम का शुद्ध स्वरूप वर्णित किया है, किंतु इनके प्रेम की व्यापकता को देखकर संदेह होता है कि इन पर प्रेममार्गी सूफ़ियों का भी कुछ प्रभाव था। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि प्रेमलक्षणा-भक्ति के सभी कवियों पर सूफ़ी कवियों का थोड़ा-बहुत प्रभाव पड़ा है। सूफ़ी कवि प्रेमी का रूप बहुत व्यापक मानते हैं। सृष्टि के अणु-अणु में, कारण में, कार्य में, कर्ता में, सब में वही प्रेम उन्हें लक्षित होता है। ठीक यही स्वरूप रसखान के प्रेम का भी था। इन्होंने भी प्रेम को सर्वत्र देखा है, यह बात इनके दो दोहों से स्पष्ट हो जायगी—

वही बीज अंकुर वही, एक वही आधार।
डाल, पात, फल, फूल सब, वही प्रेम सुखसार॥
कारज कारन रूप यह, प्रेम अहै 'रसखान'।
कर्ता, कर्म, क्रिया, करण, आपहि प्रेम बखान॥

उपर्युक्त विवेचन से भलीभाँति सिद्ध हो जाता है कि रसखान ने प्रेम का अत्यंत विशद तथा सूक्ष्म वर्णन किया है। प्रेम-निरूपण में इनकी वृत्ति खूब रमी है। ऐसा करने में इन्होंने न तो बेगार ही टाला है और न केवल सुनी-सुनाई बातों को आधार बनाया है, वरन् इस विषय का अध्ययन करके विचारपूर्वक लिखा है। यही कारण है कि इनकी 'प्रेमवाटिका' सदा हरी-भरी रहने वाली रमणीय वाटिका बन सकी है।

७. रसखान की भक्ति-भावना

अवतार की भावना : रसखान ब्रजवासी भक्त-कवि थे, अतः इनकी भक्ति-भावना पर विचार करने के पूर्व ब्रज के अन्य भक्त-कवियों की भक्ति-भावना पर विचार करना अनुपयुक्त न होगा। श्रीकृष्ण के अनन्य उपासक तथा ब्रजभाषा के श्रेष्ठ कवि महात्मा सूरदास जी की कविता पर विचार करने से पता चलता है कि वे कृष्ण को विष्णु का अवतार मानते थे। कई स्थानों पर उन्होंने ब्रह्मा और शंकर से श्रेष्ठ श्रीकृष्ण को बताया है, किंतु विष्णु से श्रेष्ठ कहीं नहीं कहा। ब्रह्मा कृष्ण की बाल-लीला देखकर चकित हो जाते थे, शंकर तो उनका दर्शन करने के लिये नित्य नया स्वाँग भरकर आते थे, किंतु विधि और हर की भाँति हरि की कोई ऐसी चेष्टा सूरदास जी ने नहीं दिखाई, जिससे कृष्ण विधि हरि हर से परे होकर परात्पर ब्रह्म के रूप में दिखाई पड़ते। गोस्वामी तुलसीदास जी के श्रीराम 'विधि हरि शंभु नचावन हारे' थे, किंतु सूरदास जी के श्रीकृष्ण भक्तों को प्रेम-सुख देने के लिये सगुण रूप में अवतरित हुए थे। यद्यपि सूरदास जी के श्रीकृष्ण भी अपने मुख में यशोदा को सारा ब्रह्मांड दिखा देते हैं, जैसे गोस्वामी जी के श्रीराम ने कौशल्या को अपने रोम-रोम में ब्रह्मांड दिखाया था, किंतु फिर भी श्रीकृष्ण में परम अक्षर ॐ परात्पर ब्रह्म की वह भावना नहीं है जो श्रीराम में है। कबीर ने भी कहीं-कहीं राम-कृष्ण का प्रयोग किया है, किंतु राम-कृष्ण से उनका तात्पर्य निर्गुण ब्रह्म से है, यह अत्यंत स्पष्ट है। वे तो एक अखंड ज्योति, प्रकाश अथवा शक्ति जो कुछ भी कहें उसी को परमेश्वर मानते थे। कबीर के निर्गुण ब्रह्म के सामने ब्रह्मा, विष्णु, महेश की कुछ भी सत्ता न थी।

सूरदास जी के श्रीकृष्ण, गोस्वामी जी के श्रीराम तथा कबीरदास के निर्गुण ब्रह्म की विशेषता पर दृष्टि रखते हुए यह देखना होगा कि रसखान की भक्ति-भावना इन्हीं में से किसी से मिलती है अथवा इनकी भावना पृथक् है। रसखान की रचना पर विचार करने से विदित होता है कि इनकी भक्ति-भावना सूरदास जी ऐसी ही है। इनके श्रीकृष्ण भी ब्रह्मा और शंकर से श्रेष्ठ हैं किंतु विष्णु से

नहीं। रसखान ने भी कृष्ण को विष्णु के अवतार के रूप में चित्रित किया है। यद्यपि इनके कृष्ण का भी पार ब्रह्मा, शंकर, योगी, वेद तथा पुराण नहीं पाते, तथापि कबीर के निर्गुण ब्रह्म की कोटि के नहीं हैं, यह बात निम्नांकित सवैये से स्पष्ट है—

गावैं गुनी गनिका गंधर्व, औ सारद सेस सबै गुन गावत।
नाम अनंत गनंत गनेस सों, ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावत॥
जोगी जती तपसी अरु सिद्ध, निरंतर जाहि समाधि लगावत।
ताहि अहीर की छोहरियां छछिया भरि छाछ पै नाच नचावत॥

यहां अन्य देवताओं के साथ त्रिदेवों में केवल ब्रह्मा और त्रिलोचन का वर्णन है, विष्णु का नाम नहीं आया क्योंकि इनकी भावना से विष्णु ही तो कृष्ण हैं। इसी प्रकार के और भी दो-तीन छंद हैं जिनमें ब्रह्मा और शंकर का ही नाम है विष्णु का नहीं। विष्णु का पर्याय हरि शब्द रसखान ने कृष्ण के लिये कई स्थानों पर प्रयोग किया है।

मेरी सुनो मति जाइ अली उहां जौनी गली हरि गावत हैं।

*

समझी न कछू अजहूं हरि सों ब्रज नैन नचाइ नचाइ हँसै। आदि

रसखान के एक छंद को सरसरी दृष्टि से देखने से भ्रम होता है कि इनके कृष्ण और कबीर के निर्गुण ब्रह्म में कोई अंतर नहीं है, किंतु बात ऐसी नहीं है। वह सवैया देखिए—

ब्रह्म मैं ढूंढ्यो पुरानन गानन वेद रिचा सुनि चौगुने चायन।
देख्यो सुन्यो कबहूं न कहूं वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन॥
हेरत हेरत हारि पर्यो 'रसखानि' बतायो न लोग लुगायन।
देखो दुरो वह कुंज कुटीर में बैठो पलोटत राधिका पायन॥

रसखान का तात्पर्य यह है कि वह ब्रह्म जो निर्गुण-निराकर-अगोचर है, वही अपने भक्तों के कल्याण के लिये सगुण रूप धारण करके उन्हें आनंद देता है। कबीर का ब्रह्म तो केवल अपनी इच्छा-शक्ति या कृपा द्वारा भक्तों का कल्याण करता है कोई रूप नहीं धारण करता। अतः कबीर के ब्रह्म से रसखान के कृष्ण

का अंतर स्पष्ट है। यहां राधिका से भक्त जनों का तात्पर्य समझना चाहिए। रसखान के कृष्ण इतने उदार तथा करुणागार हैं कि केवल भक्तों के संकट दूर करके तथा उन्हें आनंद देकर ही संतोष नहीं कर लेते, वरन् अपने को उनका दास तक बना लेते हैं, अपने से श्रेष्ठ अपने भक्तों को समझते हैं, तभी तो राधा के पैरों पर लोटते हैं और ग्वालबालों को कंधे पर चढ़ाकर घूमते हैं। रसखान ने 'प्रेमवाटिका' में भी भक्तों को हरि से श्रेष्ठ बताया है। एक और स्थल पर कृष्ण को निर्गुण-निराकार बताते हुए भी उन्हें सगुण रूप में लाकर अहीर की छोकरियों द्वारा नचवाते हैं—

सेस गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं।
जाहि अनादि अनंत अखंड अछेद अभेद सुवेद बतावैं॥
नारद से सुक व्यास रटैं, पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियां छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥

अवस्था की दृष्टि से कृष्णलीला-वर्णन : सूरदास जी ने जिस रुचि तथा तन्मयता के साथ कृष्ण की बाल-लीलाओं का वर्णन किया है, उस रुचि और तन्मयता के साथ उनके यौवन-लीलाओं का वर्णन नहीं किया। सूरदास के अतिरिक्त अष्टछाप के कवियों ने कृष्ण की बाल तथा तरुण दोनों लीलाओं का समान रूप से वर्णन किया है। रसखान ने एक ही पक्ष लिया है, किंतु सूरदास वाला पक्ष न लेकर कृष्ण की यौवन-लीलाओं का ही वर्णन किया है। वात्सल्य-भावना ने रसखान को आकर्षित नहीं किया, वे तो प्रेम के दीवाने थे। लौकिक प्रेम-क्षेत्र से मन हटाकर अलौकिक प्रेम-क्षेत्र की ओर लगाया था, अतः कृष्ण की प्रेम-लीलाओं का वर्णन करना उनके लिये स्वाभाविक ही था। उनकी सम्पूर्ण रचना में केवल दो ही सवैये ऐसे हैं जो कृष्ण की बाल्यावस्था के समय के हैं, अन्यथा सर्वत्र प्रेम ही प्रेम छाया है। कहीं गोपियां उनके प्रेम में सुध-बुध खो बैठी हैं, कहीं कृष्ण की दृष्टि में न पड़ने की शिक्षा एक सखी दूसरे को दे रही है, कहीं दूध लिये हुए गोपियों को कृष्ण छेड़ रहे हैं, कहीं कृष्ण की वंशी सारे गाँव में विष फैला रही है तथा कहीं कृष्ण होली के अवसर पर किसी गोपी की दुर्गति कर रहे हैं आदि आदि। बाल्यावस्था के उन दो सवैयों में एक यशोदा के सुख के विषय में है—

आजु गई हुती भोर ही हौं 'रसखानि' रई कहि नंद के भौनहिं ।
वाको जियो जुग लाख करोर जसोमति को सुख जात कह्यो नहिं ॥
तेल लगाइ लगाइ कै अंजन भौंह बनाइ बनाइ डिठौनहिं ।
डारि हमेल निहारति आनन वारति ज्यौं चुचकारति छौनहिं ॥

कृष्ण की बाल-क्रीड़ा से यशोदा को अकथनीय आनंद मिला, उसके वर्णन की ओर रसखान की प्रवृत्ति तनिक भी नहीं थी, केवल एक सवैया में यशोदा के सुख को दिखाकर संतोष कर लिया। उन्हें तो कृष्ण-प्रेम-जन्य गोपियों की हार्दिक टीस दिखाना इष्ट था, इसी में उन्होंने अपनी कवित्व-शक्ति का पूर्ण उपयोग किया। यद्यपि अध्ययन और सत्संग के कारण उन्हें कृष्ण की प्रायः सभी बाल-कथाएं विदित थीं, किंतु उन प्रसंगों पर रचना करने का परिश्रम रसखान ने नहीं किया। दूसरा सवैया वह है जिसमें कृष्ण के हाथ से कौए का रोटी छीन ले जाना वर्णित है—

धूर भरे अति सोभित स्यामजू तैसी बनी सिर सुंदर चोटी ।
खेलत खात फिरैं अँगना पग पैजनियां कटि पीरी कछोटी ॥
वा छवि को 'रसखानि' विलोकत वारत काम कला निज कोटी ।
काग के भाग बड़े सजनी हरि हाथ सौं लै गयौ माखन-रोटी ॥

भाव : भक्तगण अपने इष्टदेव पर भिन्न-भिन्न प्रकार के भाव रखते हैं, कोई भगवान को स्वामीरूप में, कोई सखारूप में, कोई पतिरूप में तथा कोई-कोई पुत्ररूप में भी मानते हैं। दास्य, सख्य तथा वात्सलय आदि भावों में रसखान दास्य भाव को अंगीकार करने वाले थे। ब्रज के अन्य कवियों की भाँति इन्होंने अपने उपास्यदेव को न तो सखारूप में समझा और पुत्ररूप में। ये अपने को श्रीकृष्ण का दास मानते थे। अपने उपास्यदेव को मित्र या पुत्ररूप में देखने वाले कुछ अनोखे भक्त विरले ही होते हैं, क्योंकि यह मार्ग कठिन है। पहली बात तो यह है कि भगवान को मित्र या पुत्ररूप में मानना लोग अशिष्टता समझते हैं, तथा दूसरी बात यह है कि ऐसी भावना पूर्णरूप से आना कुछ कठिन भी है। इसमें पथभ्रष्ट होने की अधिक संभावना रहती है। ऐसी भावना कोई-कोई ऊँचे महात्मा ही रख सकते हैं। रसखान मुसलमानी धर्म त्याग कर हिंदू

धर्म में दीक्षित हुए थे, अतः संभवतः ऐसी अशिष्टता का साहस नहीं कर सके अथवा हो सकता है कि अपने को उस योग्य न समझा हो। प्रायः दास्य भाव रखने वाले ही भक्त हुए हैं, सख्य या वात्सल्य भाव वाले महात्मा इने-गिने हुए हैं, कदाचित् इसीलिये रसखान ने भी वही मार्ग ग्रहण किया जो प्रायः सभी भक्तों द्वारा ग्रहण किया गया था और जो सरल तथा स्वाभाविक था।

नवधा भक्ति की ओर दृष्टि डालते हैं तो पता चलता है कि रसखान की प्रवृत्ति आत्मसर्पण की ओर अधिक थी। ये तन मन से श्रीकृष्ण के हो गये थे। पूर्व संस्कारों के प्रभाव के कारण पूजा-पाठ या ध्यान की ओर इनका मन लगना तो कठिन ही था, इन्होंने अपने हृदय को श्रीकृष्ण पर न्यौछावर कर दिया था और इसी आत्मसमर्पण को ही ये सर्वोपरि भक्ति समझते थे। इनके मत से श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम ही संसार में केवल एक तत्त्व है, जिसके बिना संसार की सारी विभूति तुच्छ तथा व्यर्थ है—

कंचन मंदिर ऊँचे बनाय कै मानिक लाय सदा झमकावै।
प्रातहि ते सगरी नगरी गजमोतिन ही की तुलानि तुलावै॥
पालै प्रजानि प्रजापति सों बन संपति सों मघवाहि लजावै।
ऐसो भयो तो कहा 'रसखानि' जु साँवरे ग्वाल सों नेह न लावै॥

ये सांसारिक ऐश्वर्य को तो तुच्छ समझते ही थे, योग, जप, तप, तीर्थ तथा व्रत आदि को भी प्रेम के सामने व्यर्थ कहते थे। यहां पर सूफ़ी मत का प्रभाव स्पष्ट है, जिस मत में एकमात्र प्रेम की ही प्रधानता है। 'प्रेमवाटिका' में प्रेम की श्रेष्ठता तो देख ही चुके, अब एक कवित्त में भी वही भाव देखिए—

कहा रसखानि सुख संपति सुमार कहा,
कहा तन जोगी ह्वै लगाये अंग छार को।
कहा साधे पंचानल कहा सोये बीच नल,
कहा जीत लाये राज, सिंधु आर पार को॥
जप बार बार तप संजम बयार व्रत,
तीरथ हजार अरे बूझत लवार को।
कीन्हों नहीं प्यार, नहीं सेयो दरबार, चित्त—

चाह्यो न निहारयो जो पै नंद के कुमार को ॥

प्रेमलक्षणा-भक्ति के अन्य कवियों ने लीलाओं का वर्णन किया तो है किंतु उनके वर्णन में वह तन्मयता या गंभीरता नहीं आई जो रसखान के सवैयों में पाई जाती है। रसखान के कृष्ण केवल काव्यगत आलंबन नहीं थे, वरन् हृदयगत आलंबन थे। इनका कहना था कि शरीर के सारे कार्य-व्यापार श्रीकृष्ण से ही संबंधित रहने चाहिए, कृष्ण के लगाव के बिना कोई कार्य कुछ मूल्य नहीं रखता—

> बैन वही उनको गुन गाइ, औ कान वही उन बैन सों सानी।
> हाथ वही उन गात सरै, अरु पाय वही जु वही अनुजानी ॥
> जान वही उन प्रान के संग, औ मान वही जु करै मनमानी।
> त्यों 'रसखानि' वही रसखानि जु, है रसखानि वहै रसखानी ॥

अपने को इस प्रकार श्रीकृष्ण पर न्यौछावर करके रसखान उन पर अटल विश्वास भी रखते थे। उन्हें अपने इष्टदेव की शक्ति तथा भक्तवत्सलता पर पूर्ण विश्वास था—

> द्रौपदी औ गनिका गज गीध अजामिल सो कियो सो न निहारो।
> गौतम गेहनी कैसी तरी, प्रहाद को कैसे हरयो दुख भारो ॥
> काहे को सोच करै 'रसखानि' कहा करिहै रविनंद बिचारो।
> कौन की संक परी है जु माखन चाखनहार सो राखनहारो ॥

इसी विश्वास के बल पर वे और किसी को कुछ नहीं समझते थे। किसी की प्रसन्नता या अप्रसन्नता का उन्हें तनिक भी ध्यान न था। उनका विचार था कि हमें और किसी से क्या लेना-देना? हमारे सारे संकट तो कृष्ण ही दूर कर देंगे। रसखान के पहले के मुसलमानी संस्कार सब प्रकार से विलीन हो गये थे। ये हिंदू संस्कृति और परंपरा में इस प्रकार घुलमिल गये थे कि यदि बताया न जाय तो पहचानना कठिन होगा कि ये मुसलमान घर में पैदा हुए थे। गणिका, गज, गिद्ध, अजामिल तथा गौतमपत्नी के द्वारा इतनी आत्मीयता भर दी है कि मुसलमानी संस्कारों की गंध तक नहीं आती। ये कृष्ण पर विश्वास रखकर बड़े-बड़े महाराजाओं तक की परवाह नहीं करते थे—

देस बिदेस के देखे नरेसन रीझि की कोऊ न बूझ करैगो।
तातें तिन्हैं तजि जान गिर्‌यौ गुन सौ गुन औगुन गाँठ परैगो ॥
बाँसुरीवारो बड़ो रिझवार है स्याम जुनेक सुढार ढरैगो।
लाड़लो छैल वही तौ अहीर कौ पीर हमारे हिये की हरैगो ॥

मुक्ति की भावना : योगी तथा भक्त अपने योग तथा भक्ति के बदले में भगवान से भी कुछ चाहते हैं। यद्यपि इस प्रकार का चाहना सकाम-योग या भक्ति नहीं कहलायेगा, क्योंकि ये सांसारिक भोगों या स्वर्ग के सुखों की इच्छा न करके मुक्ति अथवा प्रभु-पद-प्रीति ही चाहते हैं, तथापि चाहते तो कुछ अवश्य हैं। निस्संदेह योगी तो मुक्तिलाभ के लिये ही योग-साधन करता है, वह अपनी सत्ता को नित्यसत्ता में मिलाकर सदा के लिये विलीन हो जाना चाहता है, किंतु भक्तों में दो श्रेणियां हैं, कुछ तो मुक्ति चाहते हैं और कुछ मुक्ति को तुच्छ समझते हैं। अधिकांश भक्त मुक्ति को अपने अनुकूल नहीं समझते, क्योंकि मुक्ति द्वारा भगवान में सदा के लिये लीन हो जाने से भक्ति-जन्य जो अपूर्व आनंद उन्हें मिला करता है उससे वे वंचित हो जायँगे। ऐसे भक्तों की दृष्टि में मुक्ति का कोई मूल्य नहीं है। उनकी यही कामना रहती है कि जन्म-जन्मांतर तक प्रभु के चरणों में प्रीति बनी रहे। परमभक्त तुलसीदास जी भरत के द्वारा अपने हृदय की कामना बताते हैं—

अरथ न धरम, न काम रुचि, गति न चहौं निरबान।
जनम-जनम रति राम-पद, यह बरदान, न आन ॥

मुक्ति की इच्छा रखने वाले महात्माओं में भी कई भेद हैं। सभी एक ही प्रकार की मुक्ति नहीं चाहते, किसी को सालोक्य मुक्ति प्रिय है तो किसी को सारूप्य तथा कोई सामीप्य का इच्छुक है तो कोई सायुज्य का।

अब यह विचार करना है कि मुक्ति के विषय में रसखान की क्या भावना थी? रसखान इन चारो प्रकार की मुक्ति में से किसी के भी इच्छुक नहीं थे, साथ ही भक्तों की भाँति केवल प्रभु-पद-प्रीत से ही संतुष्ट भी न थे। वे इस प्रेम के अतिरिक्त और भी कुछ चाहते थे। पुष्टिमार्ग के अनुसार ब्रज में कृष्ण तथा गोपियों की नित्यलीला हुआ करती है। रसखान उस नित्यलीला में अपना समावेश

चाहते थे, उनकी इच्छा थी कि हम तन-मन से कृष्ण-लीला में रम जायँ, कभी साथ छूटे ही नहीं। निम्नांकित सवैये से उनकी मुक्ति के प्रति अनिच्छा तथा प्रत्येक दशा में श्रीकृष्ण के संपर्क में रहने की इच्छा प्रकट होती है—

मानुष हौं तो वही 'रसखानि' बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पशु हौं तो कहा बस मेरो चरौं नित नंद की धेनु मँझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरि को जो धर्यो कर छत्र पुरंदर धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं नित कालिंदी कूल कदंब की डारन॥

यह भलीभाँति स्पष्ट हो गया कि रसखान न तो मुक्ति की कामना करते थे और न केवल हृदय में भक्ति धारण करके मानसिक उपासना से संतुष्ट थे। वे सच्चे प्रेमी की भाँति सदा प्रिय के साथ रहने के इच्छुक थे।

नाम-रूप-लीला-धाम-वर्णन : भक्तकवि अपने इष्टदेव के नाम-रूप-लीला-धाम में से प्रायः सभी का वर्णन करता है। तुलसीदास जी ने तो राम से कहीं अधिक महत्त्व राम के नाम को दिया है, राम और नाम की तुलना में नाम की श्रेष्ठता दिखाते हुए अंत में यहां तक कह दिया कि 'राम न सकहिं नाम गुन गाई।' इसी प्रकार प्रायः सभी भक्त अपने भगवान के नाम का माहात्म्य वर्णन करते हैं। नाम के अतिरिक्त इष्टदेव के रूप-सौंदर्य, लीला तथा लीला-स्थलों का भी वर्णन भक्त किया करते हैं। रसखान ने रूप तथा लीलाओं का वर्णन अधिक और धाम का बहुत थोड़ा किया है, किंतु नाम का वर्णन कुछ भी नहीं किया। उनके लिये नाम-माहात्म्य कुछ नहीं था। 'नाम लेत भव सिंधु सुखाहीं' की भाँति रसखान ने कोई रचना नहीं की। वे जिस पथ के पथिक थे, उस पथ में नाम की कोई विशेष आवश्यकता भी नहीं थी। किसी का नाम तो उसकी अनुपस्थिति में लिया जाता है या बार-बार स्मरण किया जाता है। रसखान तो अपने को सदा श्रीकृष्ण के संग ही समझते थे और सदा संग रहने की इच्छा रखते थे, फिर उनके लिये नाम का माहात्म्य क्यों होता? उन्होंने मन लगाकर अपने इष्टदेव की छवि, लीला तथा लीला-स्थान का वर्णन किया है। इनमें भी धाम से उनका कोई विशेष प्रयोजन न था, उन्हें तो केवल लीला करने वाले से और उसकी की हुई लीलाओं से मतलब था। फिर भी कृष्ण ने अमुक स्थान पर लीला की है,

इस नाते थोड़ा-बहुत प्रेम उन स्थानों के प्रति भी दिखाया है। रसखान के अनेक रूप-वर्णनों में से एक रूप-वर्णन देखिए—

कल कानन कुंडल मोरपखा उर पै बनमाल बिराजति है।
मुरली कर मैं अधरा मुसकानि तरंग महाछबि छाजति है॥
'रसखानि' लखे तन पीतपटा सत दामिनि की दुति लाजति है।
वह बाँसुरी की धुनि कान परैं कुलकानि हियो तजि भाजति है॥

कृष्ण की लीलाओं के वर्णन में रसखान ने सारी शक्ति लगा दी है, उनमें से एक वर्णन देखिए—

एक तैं एक लौं काननि में रहै ढीठ सखा सब लीन्हे कन्हाई।
आवत ही हौं कहां लौं कहौं कोऊ कैसे सहै अति की अधिकाई॥
खायो दही मेरो भाजन फोर्‍यो, न छोड़त चीर दिवाये दुहाई।
'रसखानि' तिहारी सौं ए री जसोमति भागे मरू करि छूटन पाई॥

श्रीकृष्ण की लीला-भूमि गोकुल, यमुना-तट, वन, पर्वत तथा कुंजों से रसखान को कितना प्रेम था यह 'मानुष हौं तो वही रसखानि' वाले सवैया से स्पष्ट है। निम्नांकित पंक्तियों में भी धाम का वर्णन है—

'रसखानि'कबौं इन आँखिन सों ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिक हूं कलधौत के धाम करील की कुंजनि ऊपर वारौं॥

राधा की भावना : प्रत्येक कृष्णभक्त-कवि के विषय में यह विचारणीय है कि उसने कृष्ण के साथ राधा को कौन-सा स्थान दिया है? कुछ राधा को प्रेमिका अथवा सखी के रूप में मानते हैं, कुछ राधा को कृष्ण की पत्नी मानकर युगुल जोड़ी की उपासना करने वाले हैं तथा कुछ राधा को कृष्ण से भी श्रेष्ठ उनकी स्वामिनी मानते हैं। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर विदित होता है कि रसखान के उपास्यदेव राधाकृष्ण न होकर केवल कृष्ण थे। राधा की कुछ भी चर्चा न करना तो कृष्ण-भक्त के लिए असंभव-सा है, अतः रसखान ने भी दो-चार स्थलों पर कृष्ण के साथ राधा का नाम ले लिया है, किंतु न तो राधा-कृष्ण की विशेष लीलाओं का वर्णन किया है और न उनके प्रेम की पूर्ण प्रतिष्ठा ही की है। जिस प्रकार सूरदास जी ने पदों द्वारा, 'हरिऔध' जी ने 'प्रियप्रवास' द्वारा तथा 'रत्ना-

कर' जी ने 'उद्धवशतक' द्वारा राधा के अथाह वियोग-सागर में सब को डुबोया है, उस प्रकार रसखान ने राधा का वियोग नहीं वर्णन किया। राधा का वर्णन रसखान ने नाममात्र को किया है। राधा से कहीं अधिक वर्णन तो गोपियों का है। इससे पता चलता है कि राधा की ओर उनकी विशेष दृष्टि नहीं थी। राधा के विषय में जो कुछ भी रसखान द्वारा लिखा मिले, उसे समझना चाहिए कि यों ही रस्म अदाई हुई है, लिखने के अनुसार उनकी भावना नहीं समझनी चाहिए। उनकी हार्दिक भावना तो पहले ही बतलाई जा चुकी है कि उनके आलंबन केवल कृष्ण थे न कि राधाकृष्ण। कहने के लिये तो रसखान ने एक स्थान पर यह कह दिया है कि जिसे वेद-पुराण भी न ढूँढ़ सके, जो कभी देखा-सुना नहीं गया उसे 'देखो दुरो वह कुंज कुटीर में बैठो पलोटत राधिका पायन' राधिका के चरण दबाते देखा। इससे यह आशय न निकालना चाहिए कि रसखान राधा को कृष्ण से श्रेष्ठ समझते थे। वल्लभ संप्रदाय में राधा की ही प्रधानता है। रसखान उस संप्रदाय से सहमत न होते हुए भी उस से परिचित तो अवश्य थे। अतः बहुत संभव है उसी के आधार पर ऐसा कह दिया हो। एक स्थल पर राधा-कृष्ण को दूल्हन-दूल्हा के रूप में कहा है—

> मोर के पंखन मौर बन्यो दिन दूलह है अली नंद को नंदन।
> श्री वृषभानु सुती दुलही दिन जोरी बनी विधना सुखकंदन॥

'प्रेमबाटिका' में दोनों को माली-मालिन बनाया है—

> प्रेम अयनि श्री राधिका, प्रेम बरन नँदनंद।
> प्रेमबाटिका के दोऊ, माली-मालिन द्वंद॥

एक स्थान पर कृष्ण को राधा के प्रेम में अनुरक्त कहा है—

> ऐसे भये तो कहा 'रसखानि' रसै रसना जो मुक्ति तरंगहिं।
> दै चित ताके न रंग रच्यो, जु रह्यो रचि राधिका रानी के रंगहिं॥

जो कृष्ण राधा के प्रेम में रंगे हुए हैं, यदि उन कृष्ण के प्रेम में कोई न रँगा तो कुछ न किया। अन्य उक्ति-पटु कवियों की भाँति रसखान ने यह नहीं कहा कि जब कृष्ण राधा के प्रेम में अनुरक्त हैं तो तुम भी राधा की उपासना कर के उनके कृपापात्र बनकर कृष्ण का प्रेम प्राप्त करो। कृष्ण किसी पर अनुरक्त हुआ

करें, रसखान को इससे कोई प्रयोजन नहीं, वे तो सीधे कृष्ण-प्रेम के अभिलाषी थे। राधा के विषय में दो-तीन स्थलों पर भिन्न-भिन्न प्रकार से कुछ कहने पर भी यह स्पष्ट है कि राधा-वर्णन की ओर उनकी वृत्ति नहीं रमी। विना राधा के कृष्ण-प्रेम में उन्हें किसी प्रकार का अभाव नहीं प्रतीत होता था। संक्षेप में कह सकते हैं कि राधा की ओर उनकी दृष्टि न जाकर केवल कृष्ण की ओर थी।

धार्मिक कट्टरता का अभाव : यह सत्य और स्वाभाविक है कि प्रत्येक भक्त अपने इष्टदेव को सर्वश्रेष्ठ तथा महान् समझता है, किंतु उसके साथ यह आवश्यक नहीं है कि वह दूसरों के इष्टदेव के प्रति विरोध का भाव धारण करे। जो उदार भक्त हैं वे यही कहते हैं कि हमारे उपास्यदेव हमारे लिये सर्वश्रेष्ठ हैं दूसरों को हम नहीं जानते। किंतु अनुदार तथा कट्टर भक्त कहता है कि हमारे इष्टदेव सर्वश्रेष्ठ हैं और दूसरे उनके समक्ष तुच्छ हैं। तत्कालीन समय में—कुछ मात्रा में अब भी—ऐसे भक्तों की कमी नहीं थी जो कृष्ण-भक्त होने के कारण राम तथा शिव के नाम-मात्र से चिढ़ते थे और कहने वाले को मारने के लिये दौड़ते थे। उसी प्रकार राम-भक्त भी कृष्ण-नाम सुनकर गाली खाने का-सा दुख अनुभव करते थे तथा चोर, लफंगा, उपद्रवी आदि कहकर कृष्ण की निंदा किया करते थे। शैवों तथा वैष्णवों का वैमनस्य तो व्यापक था, आये दिन चिमटा-संसा चला करते थे। इसी अज्ञान-जन्य कट्टरता से दुखित होकर गोस्वामी तुलसीदास जी ने शिव तथा राम में सामंजस्य स्थापित किया और एक दूसरे का उपास्य बनाकर जनता के सम्मुख रक्खा।

रसखान उन कृष्ण-भक्तों में से नहीं थे जो कृष्ण के अतिरिक्त राम, शंकर या अन्य किसी देवी-देवता के नाम से चिढ़ते थे। उनके इष्टदेव श्रीकृष्ण सर्वोपरि अवश्य थे किंतु साथ ही उन्हें किसी से विरोध न था। विरोध की बात तो दूर रही, वे अन्य देवी-देवताओं का भी आदर करते थे। यद्यपि कई स्थानों पर उन्होंने 'शंकर से सुर जाहि भजैं' तथा 'ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावत' आदि लिखा है, किंतु एक स्थल पर तो उन्होंने कृष्ण और शंकर को अभिन्न माना है। एक ही पद में रूप के आधे अंग में हरि की तथा आधे अंग में शंकर की शोभा वर्णन करने को हरिशंकरी कहते हैं। रसखान ने भी कृष्ण और शंकर को एक समझते हुए यह हरिशंकरी लिखी है—

इक ओर किरीट लसै, दुसरी दिसि नागन के गन गाजत री।
मुरली मधुरी धुनि ओठन पै, उत डामर नाद से बाजत री॥
'रसखानि' पितंबर एक कँधा पर, एक बघंबर छाजत री।
अरी देखहु संगम लै बुड़की निकसे यह भेष विराजत री॥

कृष्ण के साथ में शंकर का वर्णन तो किया ही है, स्वतंत्र भी शंकर जी का बड़ा सुंदर वर्णन कर रसखान ने शिव-प्रेम अथवा शिव-आदर का परिचय दिया है। वर्णन अत्यंत सजीव तथा आकर्षक है—

यह देख धतूरे के पात चबात औ गात सों धूली लगावत हैं।
चहुँ ओर जटा, अँटकी लटकैं, सुभ सीस फनी फहरावत हैं॥
'रसखानि' जेई चितवै चित दै तिनके दुख दुंद भजावत हैं।
गजखाल कपाल की माला विसाल सो गाल बजावत आवत हैं॥

त्रिदेवों को, विशेषकर हरि और शंकर को, एक ही कोटि के समझना तथा उन्हें समान आदर देना तो एक सामान्य बात है। रसखान की धार्मिक उदारता का पता इससे भी चल सकता है कि उन्होंने भगवती भागीरथी का वर्णन बड़ी भक्तिपूर्वक किया है। वह सवैया निम्नांकित है—

बैद की औषधि खाइ कछू न करै वह संजम री सुन मोसें।
तेरोई पानी पिये 'रसखानि' सजीवन जानिल है सुख तोसें॥
ए री सुधामयी भागीरथी सब पथ्य कुपथ्य बनै तुहिं पोसें।
आक धतूरो चबात फिरै विष खात फिरै सिव तेरे भरोसें॥

गंगाजल में इतनी अटल भक्ति और इतना दृढ़ विश्वास उन्हें कैसे हुआ यह वे ही जानें किंतु इतना सत्य है कि उन्होंने बनावटी नहीं, हृदय की सच्ची बात लिखी है। इन्हीं सब कारणों को देखकर कहा जा सकता है कि रसखान में धार्मिक उदारता थी।

८. रसखान की काव्य-भाषा

भाषा की विचार पद्धति: साहित्याचार्यों ने भाषा का विचार स्वतंत्र रूप से किसी एक स्थल पर नहीं किया। भाषा-संबंधी भिन्न-भिन्न अवयवों का विचार

भिन्न-भिन्न प्रसंगों के अंतर्गत किया है, अतः भाषा-संबंधी विचारणीय बातें पृथक् पृथक् पड़ी हुई हैं। वे भिन्न-भिन्न प्रसंग हैं रीति, गुण, अलंकार तथा वृत्ति। वैदर्भी, गौड़ी, पांचाली तथा लाटी आदि रीतियों का विवेचन करना भाषा के ही एक अंग पर विचार करना है। प्रसाद, माधुर्य तथा ओज गुण का विचार भी भाषा के ही अंतर्गत आता है। अलंकारों में शब्दालंकार मात्र भाषा से ही संबंध रखते हैं, क्योंकि उनमें भाव या विषय का चमत्कार न होकर केवल शाब्दिक चमत्कार रहता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा-संबंधी बातें अलग-अलग भेदों में बँटी हुई हैं, अतः किसी कवि की भाषा पर विचार करने के लिये हमें उपर्युक्त बातों पर ध्यान देना होगा।

ब्रजभाषा का प्रकृत-गुण : रसखान की काव्य-भाषा ब्रज है, जो उस समय काव्य-सिंहासन पर आरूढ़ थी। ब्रजमंडल के कवि तो ब्रजभाषा में कविता करते ही थे, अन्य प्रांतवासी कवि भी ब्रजभाषा में ही रचना करते थे। अवधी भाषा के प्रतिनिधि तथा पोषक महाकवि तुलसीदास जी भी ब्रजभाषा में कविता करने के लोभ को संवरण न कर सके थे। जो पद आज खड़ी बोली को प्राप्त है, वही पद उस समय ब्रजभाषा को प्राप्त था। अतएव यह देख लेना चाहिए कि उसमें कौन से ऐसे गुण हैं, जिनके कारण वह कवियों को आकर्षित कर सकी। ब्रज-भाषा का स्वाभाविक गुण है माधुर्य। भाषा की मधुरता जितनी इस भाषा में है, उतनी किसी में नहीं है। ब्रजभाषा के इसी गुण पर रीझकर सम्राट् अकबर कुछ दिन वृंदावन में जाकर रहे थे। और वहां के गोप-गोपिकाओं की सरल तथा मीठी बातें सुनते थे आज भी जो वृंदावन या उसके आस-पास के गाँवों में जाता है, वह वहां की बोली सुनकर मुग्ध हो जाता है। ब्रजभाषा में एक विचित्र सरलता, सरसता तथा आकर्षण होता है, एक विचित्र मिठास होती है। इस भाषा का एक विशेष गुण इसकी पाचन-शक्ति भी है। संस्कृत, फ़ारसी, अरबी आदि भाषाओं के शब्द बड़ी सरलता से अपने में मिला लेती है। उस पर भी विशेषता यह है कि वे शब्द ब्रजभाषा के साँचे में ही ढल जाते हैं। रसखान की भाषा में भी ऐसे शब्द आये हैं जिनका उल्लेख यथास्थान होगा। एक बात ध्यान देने की और है, वह यह कि ब्रजभाषा में संस्कृत-फ़ारसी के वे ही शब्द स्थान पा

सकते हैं जो सरल हों और जिनका प्रयोग सर्वसाधारण में होता हो।

ब्रजभाषा भाषा रुचिर, कहैं सुमति सब कोइ।
मिलै संस्कृत पारस्यौ, पै अति प्रगट जु होइ॥

'अति प्रगट' शब्द से स्पष्ट कर दिया गया है कि संस्कृत-फ़ारसी के सरल शब्द ही ब्रजभाषा में मिल सकते हैं। ब्रजभाषा के विषय में इतनी बात कहकर अब हम रसखान की भाषा पर विचार करेंगे।

भाषा-माधुरी : ब्रजभाषा के तीन ही कवि ऐसे हैं जिनकी भाषा परिमार्जित तथा सुव्यवस्थित है, वे कवि हैं—रसखान, बिहारी तथा घनानंद। यह जानकर आश्चर्य किया जा सकता है कि ब्रजभाषा के महाकवि सूरदास जी का नाम नहीं आया, किंतु ध्यान देने की बात है कि सूरदास जी ने जितनी शक्ति भाव-द्योतन की ओर लगाई है, उतनी भाषा-सौष्ठव की ओर नहीं लगाई। निस्संदेह अंत-र्वृत्तियों को पहचानने की जो सूक्ष्म दृष्टि सूरदास जी के पास थी, वह किसी को नहीं प्राप्त हो सकी, किंतु यहां भाव-पक्ष का विचार न होकर भाषा-पक्ष का विचार हो रहा है और यह सुगमता पूर्वक देखा जा सकता है कि उनकी भाषा में जितना सौंदर्य है उससे कहीं अधिक सौंदर्य उनके बाद के इन कवियों की भाषा में है। ब्रजभाषा के अंतिम महाकवि बा० जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने एक स्थान पर कहा है कि यदि ब्रजभाषा का व्याकरण बनाना हो तो रसखान, बिहारी और घनानंद का अध्ययन करना चाहिए। इन तीनों महाकवियों की भाषा-विशेषता भी पृथक्-पृथक् है। बिहारी की व्यवस्था कुछ कड़ी तथा भाषा अधिक परिमार्जित एवं साहित्यिक है। घनानंद में भाषा-सौंदर्य उनके लाक्षणिक प्रयोगों के कारण आया है। रसखान की न तो व्यवस्था ही कड़ी है, न भाषा ही उतनी साहित्यिक है तथा न लाक्षणिक प्रयोग ही अधिक है, उनकी भाषा में ब्रज की प्रकृत-माधुरी आ गई है। उन दोनों कवियों ने भाषा को कुछ सँवारने का प्रयत्न किया है, किंतु रसखान ने ठीक उसका स्वाभाविक रूप लिया है। रसखान को कृत्रिम माधुर्य उत्पन्न करने का प्रयास नहीं करना पड़ा, बोलचाल के ही शब्दों को ग्रहण करने के कारण उनकी भाषा स्वतः मधुर हो गई है।

भाषा-प्रवाह : रसखान की भाषा का दूसरा प्रधान गुण भाषा-प्रवाह है।

बोलचाल की भाषा जब कुछ परिस्कृत रूप में आती है तब उसमें एक प्रवाह आ जाता है। इनकी भाषा में प्रवाह आने के कुछ और भी कारण हैं। रसखान ने घनानंद की भाँति अंतर्वृत्तियों की छानबीन नहीं की, प्रत्युत रूप का वाह्य वर्णन ही किया है, अतः सीधा विषय होने के कारण भी भाषा में कुछ प्रवाह आ गया है। बिना अर्थ पर ध्यान दिये इनके सवैयों को पढ़ने मात्र से एक प्रकार का आनंद मिलता है। पढ़ने में किसी प्रकार की रुकावट नहीं मालूम होती, परवर्ती शब्द स्वतः उच्चरित होते चलते हैं। रसखान के भाषा-प्रवाह का तीसरा कारण है उनका छन्द चुनाव। अधिकतर उन्होंने मत्तगयंद सवैये लिखे हैं। इस छंद का ऐसा नाम कदाचित इसकी सुंदर गति के ही कारण पड़ा है। एक तो हाथी की चाल योंही मस्तानी होती है, उस पर मदमस्त हाथी की चाल का क्या पूछना? रसखान के सवैयों की मदमत्त गजगामिनी गति है। रसखान ने मनहरण कवित्त भी लिखे हैं। नाम ही उसका मनहरण है। यदि मनहरण छंद द्वारा मनहरण भाषा (ब्रज) में मनहरण विषय (कृष्ण-लीला) वर्णित किया जाय तो क्या आश्चर्य है यदि वह सब का मन हरण करले। रसखान के सवैयों का प्रवाह देखिए—

भौंह भरी बरुनी सुथरी अतिसै अधरानि रँगी रँग रातो।
कुंडल लोल कपोल महाछवि कुंजनि ते निकस्यो मुसकातो॥
'रसखानि' लखे मग छूटि गयो डग भूलि गई तन की सुधि सातो।
फूटि गयो सिर को दधि भाजन टूटिगो नैननि लाज को नातो॥

एक सवैया और देखिए—

आयो हुतो नियरे 'रसखानि' कहा कहूं तू न गई वह ठैया।
या ब्रज की बनिता जिहिं देखिकै वारहिं प्रानन लेहिं बलैया॥
कोऊ न काहू की कानि करै कछु चेटक सो जु कर्‌यो जदुरैया।
गाइगो तान जमाइगो नेह रिझाइगो प्रान चराइगो गैया॥

उदाहरणस्वरूप दो सवैये पर्याप्त हैं क्योंकि जब इनकी समस्त रचना में ऐसा ही प्रवाह है तो कहां तक उदाहरण दिये जा सकते हैं। भाषा में प्रवाह आने का कारण शब्दों का चलतापन है, यह कहा जा चुका है। 'वे लाल लसैं पर पाँवरिया', 'दै गयो भावतो भाँवरिया' में पौरी-भौंरी के स्थान पर 'पाँवरिया'

'भाँवरिया' ले आने से कितनी सुंदरता और सरसता आ गई है।

अरबी-फ़ारसी : अब उन शब्दों पर विचार कर लेना चाहिए जो अन्य भाषाओं के हैं और जो ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुसार रसखान की रचना में भी आ गये हैं। कुछ शब्द तो रसखान ने ज्यों के त्यों ले लिये हैं, किंतु कुछ को ब्रज का जामा पहनाकर उनका विदेशीपन बहुत कुछ निकाल दिया है। पहले अरबी-फ़ारसी के शब्दों को लीजिए—

प्रेम-रूप दर्पन अहो, रचै अजूबो खेल।

यहां 'अजीब' शब्द को अजूबो करके ब्रज की संपत्ति बनाने का प्रयत्न लक्षित हो रहा है। 'ताहि सरौ लखि लाख जरौ इहि पाख पतिव्रत ताख धरौ जू', इस पंक्ति में अरबी के 'ताक़' को ताख कर देने से दो लक्ष्यों की पूर्ति हुई है। एक तो लाख, पाख के साथ ताख में अनुप्रास की सुंदरता स्वतः आ गई, दूसरे ताख शब्द कुछ अपना-सा जान पड़ने लगा।

कहा 'रसखानि' सुख संपति सुमार कहा,
कहा तन जोगी ह्वै लगाये अंग छार को'।

रसखान 'शुमार' को सुमार करके ही ग्रहण कर सके हैं। इनके अतिरिक्त नेजा, तीर, जाँबाज़ी, महबूब आदि शुद्धरूप में ले आये हैं, किंतु इतनी रचना में कुछ शब्दों का आ जाना साधारण बात है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि रसखान उर्दू शब्द अधिक न आने देने के लिये सतर्क थे।

अवधी : रसखान की भाषा में कुछ अवधी भाषा के भी शब्द पाये जाते हैं। वास्तविक बात तो यह है कि अवधीभाषा के कवि का ब्रज के शब्दों से और ब्रजभाषा के कवि का अवधी के शब्दों से बचना कठिन है। 'झाँकन देत नहीं है दुवारो' तथा 'क्यों अलि भेंटिए प्रान पियारो' में 'दुवारो' तथा 'पियारो' अवधी के रूप हैं, ब्रजभाषा में इनके रूप 'द्वारो' तथा 'प्यारो' होंगे, जैसा कि रसखान ने एक अन्य स्थान पर प्रयोग किया है, 'न तो पीहैं हलाहल नंद के द्वारें'। इसी प्रकार 'ताहि अहीर की छोहरियां' तथा 'नहिं बारत प्रान अबार लगावैं' में 'ताहि' तथा 'अबार' अवधी के शब्द हैं। इनके अतिरिक्त अस, केरी, आहि तथा अहै भी अवधी भाषा के ही शब्द हैं जो रसखानकी रचना में प्रयुक्त हुए हैं।

अपभ्रंश : ब्रजभाषा को शौरसेनी अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी समझना चाहिए। इसमें अब तक कुछ प्राचीन शब्द चले आते हैं, शब्द ही नहीं, व्याकरण के रूप भी वर्तमान हैं। रसखान की कविता में भी अपभ्रंश (पुरानी हिंदी) के शब्द तथा रूप प्रयुक्त हैं। 'गंगाजी में न्हाइ मुक्ताहल हू लुटाय' में 'मुक्ताहल' शब्द पुरानी हिंदी का ही है, जो ब्रज-कवियों द्वारा प्रयुक्त होता हुआ 'रत्नाकर' जी तक की कविता में आया है। 'आज महूं दधि बेचन जात ही' में 'ही' अपभ्रंश का शब्द है जिसका अर्थ है 'थी'। अपभ्रंश में मध्यग 'त' का लोप हो जाता है, तभी थ में से 'त' का लोप हो गया और प्राणध्वनि केवल 'ह' रह गई। 'बेनु बजावत गोधन गावत ग्वालन के सँग गोमधि आयो' में व्याकरण का प्राचीन रूप दिखाई पड़ता है। अपभ्रंश में सप्तमी का चिह्न इ है, वही इ ध में लगी हुई है जिसका अर्थ है गायों के मध्य में। रसखान दो-एक नामधातुओं का भी प्रयोग करके अच्छा सौंदर्य ले आये हैं, जैसे 'आँखि मेरी अँसुवानी रहै' में अश्रुपूर्ण आँखों के लिये 'अँसुवानी' शब्द का प्रयोग बड़ा सुंदर हुआ है। नामधातु का ऐसा प्रयोग ब्रज आदि पुरानी भाषाओं के अतिरिक्त अन्यत्र कहां ? खड़ीबोली में ऐसे प्रयोग किये ही नहीं जा सकते।

राजस्थानी : रसखान की रचना में एक राजस्थानी शब्द भी पड़ा हुआ है। 'तू गरबाइ कहा झगरै रसखानि तेरे बस बावरी होसै'। यह 'होसै' राजस्थानी शब्द 'होसी' का ही रूप है जिसका अर्थ है 'होगा'। रसखान इस शब्द को इस लिये नहीं लाये कि राजस्थानी का भी एक शब्द आ जाय; वरन् उन्हें अपना काम निकालना था। इसके बाद की पंक्तियों में कोसै-रोसै आदि है, इसीलिये बिना किसी हिचक के आपने होसै रख दिया। यह पहले कहा जा चुका है कि इन्होंने भाषा को सुंदर बनाने का कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया, इनकी भाषा में जो भी सौंदर्य आया है, वह प्रकृत-गुण होकर आया है।

परंपरागत शब्द : कुछ ऐसे शब्द होते हैं जो काव्य-परंपरागत होते हैं। जनता के बीच उनका व्यवहार नहीं होता, किंतु फिर भी कवियों द्वारा वे काव्य में प्रयुक्त होते हुए बराबर चले चलते हैं। ब्रजभाषा में कुछ ऐसे ही शब्द हैं। इन शब्दों को वही कवि प्रयोग में ला सकता है, अथवा वही पाठक या श्रोता

समझ सकता है, जो ब्रजभाषा की परंपरा से परिचित होगा। रसखान की भाषा में भी कुछ ऐसे शब्द मिलते हैं। 'छछिया भर छाछ पै नाच नचावें' 'छछिया' ब्रजभाषा का विशेष शब्द है। इसी प्रकार 'वह गोधन गावत' तथा 'सोई है रास में नैसुक नाचि कै' में 'गोधन' तथा 'नैसुक' परंपरागत शब्द हैं। इससे पता चलता है कि रसखान ब्रजभाषा की परंपरा से पूर्ण परिचित थे।

मुहावरों का प्रयोग : मुहावरों के प्रयोग से भाषा में एक प्रकार की शक्ति आ जाती है। समर्थ कवि ही मुहावरों का उपयुक्त प्रयोग कर सकते हैं। मुहावरों में भी भेद होता है, कुछ लोक-प्रचलित रहते हैं तथा कुछ काव्य-परंपरा में ही सीमित रहते हैं केवल काव्य-क्षेत्र के मुहावरों से भाषा में उतना प्रभाव नहीं आता जितना कि लोक-प्रचलित मुहावरों के प्रयोग से आता है। रसखान ने उन्हीं मुहावरों का प्रयोग किया है जो जन-समाज में प्रसिद्ध हैं, अतः इनके कारण रसखान की भाषा की प्रभावोत्पादन-शक्ति कुछ बढ़ गई है। उदाहरण के लिये देखिए 'यह रसखानि दिना द्वै में बात फैलि जैहै कहाँ लौं सयानी चंदा हाथन छिपाइबो' में 'हाथों से चाँद छिपाना' बहुत प्रसिद्ध मुहावरा है। 'पाले परी मैं अकेली लली' में 'पाले पड़ना' मुहावरा गोपी की दीनावस्था को और भी बढ़ाकर काव्य-रस को प्रगाढ़ कर देता है। 'आँख सों आँख लड़ी जबहीं, तब से ये रहैं अँसुवा रँग भीनी' में 'आँख से आँख लड़ना' मुहावरा कौन न जानता होगा। 'नेम कहा जब प्रेम कियो, अब नाचिए सोई जो नाच नचावै' में 'नाच नचाना' मुहावरे से ब्रजबालाओं की दयनीय दशा प्रकट हो रही है। 'या ते कहूं सिख मान भटू, यह हेरनि तेरे ही पैंड़ परैगी' में 'पैंड़ परना' (पीछे पड़ना) मुहावरे से सखी की शिक्षा में और भी बल आ गया है। इस प्रकार रसखान ने मुहावरों के प्रयोग से भाषा को बलवती बनाया है, किंतु स्मरण रखना चाहिए कि मुहावरों का प्रयोग उनका प्रधान लक्ष्य नहीं था, केवल मुहावरा लाने के लिये ही उन्होंने पूरी सवैया नहीं गढ़ी, वरन् विषयानुसार मुहावरे बिना अधिक प्रयत्न के आ गये हैं। कवि कलम को कपोल पर रखकर मुहावरा सोचने में तन्मय नहीं हुआ, यह तो उसकी क्षमता और तीव्र बुद्धि का परिणाम है जो मुहावरे यथास्थान स्वयं उसकी कलम से लिख गये या मुँह से निकल गये।

यह कहा जा चुका है कि रसखान की भाषा में लाक्षणिक प्रयोग नहीं हैं, क्योंकि उन्हें सीधे ढंग से बात कहना अभीष्ट था, फिर भी सफल कवि के नाते दो-एक लाक्षणिक प्रयोग स्वतः आ गये हैं, उन का दिग्दर्शन करा देना अनुचित न होगा।

तान सुनी जिनहीं तिनहीं तबहीं तिन लाज बिदा करि दीनी।

यहां 'लाज बिदा करना' लाक्षणिक प्रयोग है। इसी प्रकार और भी दो-एक प्रयोग मिल सकते हैं।

शब्द-भंग : कुछ ऐसे भी कवि होते हैं जो जान-बूझकर शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा करते हैं और अपनी समझ से सुंदरता लाने पर भी उनकी सुंदरता बनने के स्थान पर बिगड़ जाती है। किंतु सभी कवि ऐसे नहीं होते, कुछ ऐसे भी होते हैं जिनके शब्द-भंग में ही एक विशेष चमत्कार आ जाता है। रसखान भी ऐसे ही कवि थे। उन्होंने आवश्यकतानुसार शब्दों को अपने मन का बना लिया है, और ऐसा करने में उनकी भाषा में लालित्य ही आया है, कुछ कर्कशपन नहीं आने पाया।

कोऊ कहै छरी कोऊ भौन परी डरी कोऊ,
कोऊ कहै मरी गति हरी अँखियानि की।

यहां 'छली' के स्थान पर 'छरी' कर देने से एक मिठास आ गई है, साथ ही परी, डरी, मरी और हरी के साथ तुक भी बैठ गया है।

टूटे छरा बछरादिक गोधन जो धन है सु सबै धन देहौ।

यहां पर भी 'छल्ला' के लिये 'छरा' में वही सादगी तथा भोलापन भरा हुआ है। 'मोल छला के लला न बिकैहौं' में 'लला' के रहने के कारण 'छला' ही रक्खा, अर्थात् जहां जैसी आवश्यकता देखी वैसा रूप रक्खा। केवल दो-एक स्थल ही ऐसे हैं जहां की तोड़-मरोड़ खटकती है, जैसे 'लाल रिझावन को फल पेती' में 'पेती' शब्द पाती के लिये है जो केती-देती के जोड़ में आया है, किंतु इसमें न तो सुंदरता आई है और न भाव ही स्पष्ट हुआ है।

स्वाभाविक चमत्कार : विषय के प्रतिपादन में रसखान ने अत्यंत सीधा मार्ग ग्रहण किया है। उनके भाव अत्यंत स्पष्ट हैं। चमत्कार की ओर उनकी रुचि

नहीं थी, अलंकारों की ओर उनका ध्यान गया ही नहीं। वे स्वयं भावमग्न होकर दूसरों को भी भावमग्न करना चाहते थे, यही कारण है कि भाषा-चमत्कार के चक्कर में न तो वे ही पड़े और न दूसरों को डाला। यह नहीं कहा जा सकता कि काव्य के इस अंग का उन्हें ज्ञान ही न था। वे प्रतिभाशाली कवियों में से थे। अन्य संतो या भक्तों की भाँति बिना योग्यता तथा अध्ययन के उन्होंने कविता करना आरंभ नहीं किया था। रसखान ने कठिन परिश्रम करके तत्कालीन तथा प्राचीन साहित्य का अध्ययन किया था, भाषा तथा भाव संबंधी सभी बातों से परिचित थे। उनमें इतनी क्षमता थी कि भाषा को अलंकृत कर सकते थे, किंतु उन्हें यह अभीष्ट न था। अतः उनकी भाषा में अलंकारों अथवा चमत्कारपूर्ण स्थलों की भरमार नहीं है। अलंकारों की ओर ध्यान न देते हुए भी उनकी भाषा में स्वतः कुछ अलंकार आ गये हैं जो भाषा को सजाने के साथ-साथ रसोद्रेक में भी सहायक हुए हैं। इन अलंकारों में अनुप्रास मुख्य है। यों तो रूपक, यमक, उपमा सभी के एक-एक दो-दो उदाहरण मिल जायँगे, किंतु अनुप्रास प्रायः प्रत्येक छंद में है, जिससे भाषा में अद्भुत सौंदर्य तथा प्रवाह आ गया है। स्थान-स्थान पर अनुप्रास होने पर भी यह नहीं भासित होता कि भूषण कवि की भाँति वे बलात् लाकर बैठाये गये हैं। अलंकारों का क्रम से उल्लेख किया जा रहा है।

अनुप्रास : 'दोऊ परैं पैयां, दोऊ लेत हैं बलैयां, इन्हें भूलि गई गैयां, उन्हें गागर उठाइबो' इसमें 'पैयां', 'बलैयां' और 'गैयां' का कितना स्वाभाविक अनुप्रास है। 'रस बरसावै तन तपन बुझावै नैन प्रानन रिझावै वह आवै रसखानि री' यहां 'बरसावै', 'बुझावै', 'रिझावै' तथा 'आवै' के कारण भाषा में एक प्रवाह आ गया है, जो कहकर ही प्रकट किया जा सकता है, लिखकर नहीं। 'कहा कहौं आली खाली देत सब ठाली पर मेरे बनमाली को न काली ते छुड़ावहीं' क्या कहा जा सकता है कि यह अनुप्रास प्रयत्नसाध्य है? वही स्वाभाविकता इस अनुप्रास में भी है 'गाइगो तान जमाइगो नेह रिझाइगो प्रान चराइगो गैया'। निम्नांकित सवैये में कितना सुंदर अनुप्रास है फिर भी भाषा-चमत्कार की ओर ध्यान न जाकर भाव की ओर ही जाता है, इसका कारण यही है कि शब्द ढूँढ़-ढूँढ़कर नहीं बैठाये गये, स्वतः आते गये हैं—

> नैन लख्यो जब कुंजन तें बनिकै निकस्यो मटक्यो मटक्यो री।
> सोहत कैसे हरा टटकौ सिर तैसो किरीट लसै लटक्यो री॥
> को 'रसखानि' रहै अँटक्यो हटक्यो ब्रज लोग फिरैं भटक्यो री।
> रूप अनूपम वा नटको हियरे अँटक्यो अँटक्यो अँटक्यो री॥

इस पंक्ति को देखिए 'नैननि सैननि बैननि में नहिं कोऊ मनोहर भाव बच्यौ री' 'नैननि', 'सैननि' और 'बैननि' के कारण भापा में लोच तथा कोमलता आ गई है। 'दै चित ताके न रंग रच्यो जु रह्यो रचि राधिका रानी के रंगहिं' इसमें स्पष्ट लक्षित होता है कि 'र' से आरंभ होने वाले, शब्दों को लाने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया, आवश्यकता ही उन्हीं की थी। अब यदि संयोग से अनुप्रास हो गया तो कवि का प्रयत्न नहीं किंतु कवि की सरस तथा अतुल शब्दावली की बहुलता कही जायगी।

यमक : दो-एक स्थलों पर यमक भी आ गया है उसे भी देख लेना चाहिए। 'मैया की सौं सोच कछू मटकी उतारे को न गोरस के ढारे को न चीर चीर डारे को' यहां पहले 'चीर' का अर्थ साड़ी तथा दूसरे 'चीर' का अर्थ फाड़ना है। इसी प्रकार 'या मुरली मुरलीधर की अधरान धरी अधरा न धरौंगी' में भी मध्यम श्रेणी का यमक है क्योंकि दूसरे अधरान में 'अधरा' और 'न' अलग-अलग शब्द हैं। पहला अधरान अधर (होंठ) का बहुवचन और दूसरे अधरान का अर्थ होठों में न (धरूँगी) है। अलंकारों की ओर रुचि न होने के कारण अधिक उदाहरण नहीं मिल सकते।

श्लेष : अपने नाम का रसखान ने आवश्यकतावश श्लेष की भाँति प्रयोग किया है, जो बहुत जँचता है। उसी 'रसखान' से अपने नाम का भी बोध कराया है और संपूर्ण रसों की खान भगवान श्रीकृष्ण की ओर भी संकेत है। ऐसे कई स्थल हैं, उनमें से एक का ही उल्लेख करना ठीक होगा। 'हाँसी में हार रह्यो रसखानि जू जो कहुँ नेक तगा टुटि जैहैं' यहां 'रसखानि जू' से कवि का नाम भी लक्षित होता है और गोपियों के लिये कृष्ण को संबोधन का काम भी दे रहा है। घनानंद ने भी 'सुजान' शब्द को श्लेप बनाकर प्रयुक्त किया है। रसखानि शब्द के अतिरिक्त एक स्थल पर रसखान ने शुद्ध श्लेप का प्रयोग किया है और बड़ी

सुंदरता के साथ किया है।

मन लीनो प्यारे चितै, पै छटांक नहिं देत।

इसमें 'मन' शब्द के दो अर्थ हैं, एक तौलने वाला मन और दूसरा चित्त।

रूपक : रूपक एक ऐसा अलंकार है जो अनायास ही नहीं आ जाता, इस के लिये कवि को इसी के उद्देश्य से प्रयत्न करना पड़ता है। यही कारण है कि रसखान की रचना में दो-एक रुपक ही मिलते हैं। उनका एक रूपक मिलता है और वह भी सांगरूपक नहीं है। संभव है रसखान ने इसके लिये प्रलय किया हो या यह भी स्वतः आ गया हो। 'खंजन नैन फँदे पिंजरा छवि नाहिं रहैं थिर कैसे हूं माई' इसमें खंजन रूपी नेत्रों को छवि-रूपी पिंजड़े में फँसाकर रूपक लाया गया है।

उपमा : यों तो दो-एक उपमाएं रसखान की रचना में खोजने से मिल जायँगी किंतु इस ओर इनका ध्यान न था अतः अधिक उपमाएं नहीं मिलेंगी। जो उपमाएं आई भी हैं वे बड़ी सटीक और उपयुक्त हैं, जैसे 'द्विरद को रद ऐंचि लियो रसखानि इहै मन आइ विचार-सी। लागी कुठौर लई लखि तोरि कलंक तमाल तें कीरति डार-सी॥' इसमें हाथी के दांतों की उपमा कीर्ति-रूपी डार से दी गई है। कीर्ति या यश का वर्ण उज्वल माना गया है, हाथी के दांत भी उज्वल होते हैं। कलंक का स्वरूप काला है और हाथी का रंग भी काला होता है।

पुनरुक्ति-प्रकाश : कोई एक शब्द या वाक्यांश जब दो या तीन बार एक ही अर्थ में प्रयुक्त होता है तो भाषा में बल और भाव में तीव्रता आती है। दो बार से अधिक बल तीन बार में आता है, क्योंकि यों भी लोक में त्रिवाचा का बड़ा प्रभाव कहा गया है। जब किसी बात की दृढ़ता या निश्चयात्मिकता प्रकट करनी होती है तो क्रिया को तीन बार कहते हैं, जैसे एक घुमक्कड़, हठी और दुलारा लड़का पिता से कहता है 'मैं बंबई घूमने जाऊँगा, जाऊँगा, जाऊँगा'। 'जाऊँगा' की प्रत्येक पुनरुक्ति पर उसके विचार की दृढ़ता बढ़ती जाती है। यह तो ऐसा उदाहरण हुआ जिससे लड़के पर क्रोध आ सकता है किंतु जब यही त्रिवाचा किसी अच्छे भाव में कविता में प्रयुक्त होता है तो उसके कारण एक अनोखा सौंदर्य आ जाता है, इस चमत्कार को आचार्यों ने पुनरुक्ति-प्रकाश नामक अलंकार

कहा है। कहीं-कहीं तो यह भद्दा लगने लगता है, इसका कारण कवि की असावधानी तथा अयोग्यता है। रसखान ने इसका बड़ा मार्मिक, आकर्षक तथा प्रभावपूर्ण प्रयोग किया है।

टेरि कहौं सिगरे ब्रजलोगनि कान्हि कोऊ कितनो समुझैहै।
माई री वा मुख की मुसकानि सम्हारि न जैहै न जैहै न जैहै ॥

'न जैहै' की पुनरुक्ति से भाव में कितनी सबलता तथा मुसकान देखकर अपने को सँभालने में गोपी की कितनी असमर्थता प्रकट हो रही है। इसी प्रकार एक स्थान पर और देखिए—

चहुँ ओर बबा की सौं सोर सुनै मन मेरेऊ आवत रीस कसै।
पै कहा करौं वा 'रसखानि' बिलोकि हियो हुलसै हुलसै हुलसै ॥

सिंहावलोकन : जब छंद के पहले चरण का अंतिम शब्द दूसरे चरण का आरंभिक शब्द हो जाता है और फिर दूसरे चरण का अंतिम शब्द तीसरे चरण का आरंभिक शब्द हो जाता है और यही संबंध तीसरे-चौथे चरण में भी रहता है तब वह सिंहावलोकन अलंकार कहलाता है। इसके कारण भाषा में बहुत थोड़ा सौंदर्य आने के अतिरिक्त भाव-सौंदर्य में कुछ भी वृद्धि नहीं होती। ऐसा एक ही छंद है जहां यह अलंकार आया है—

बजी है बजी 'रसखानि' बजी सुनि कै अब गोपकुमारि न जीहै।
न जीहै कदाचित कामिनी कोऊ जु कान परी वह तान कुँ पीहै ॥
कुँ पीहै बचाव को कौन उपाव तियान पै मैन ने सैन सजी है।
सजी है तो मेरो कहा बस है, जब बैरिन बाँसुरी फेरि बजी है ॥

उत्प्रेक्षा : रसखान की रचना में दो-एक उत्प्रेक्षाएं भी अपनी छटा दिखा रही हैं। यदि उत्प्रेक्षा उपयुक्त हो तो भाव और भी प्रभावशाली हो जाता है। रसखान की उत्प्रेक्षा देखिए—

यों जग जोति उठी तन की उसकाइ दई मनौ बाती दिया की।

मंद होते हुए दीपक की बत्ती उसका देने से जिस प्रकार प्रकाश बढ़ जाता है उसी प्रकार कृष्ण का आना सुनकर मूर्छित गोपी चैतन्य हो गई। इस उत्प्रेक्षा के ण भाव स्पष्ट तथा सरस हो गया है।

संदेह : संदेह अलंकार में भी एक विचित्र भोलापन छिपा रहता है। जब यह भोलापन (Innocence) शृंगाररस में नायिका की ओर से प्रकट किया जाता है तो इसमें और भी रस तथा प्रभावोत्पादकता आ जाती है। रसखान ने बड़ी योग्यता के साथ इसका उपयोग किया है। इस पंक्ति को देखिए—

जानिए न आली यह छोहरा जसोमति को
बाँसुरी बजाइगो कि विष बगराइगो।

बेचारी गोपिका परेशान है, उसे यह पता नहीं लगता कि वह बाँसुरी की ध्वनि सुनने के कारण मूर्छित हुई जा रही है कि विष के प्रभाव से यह हाल है। उसे संदेह हो रहा है कि कृष्ण ने बंशी नहीं बजाई किंतु विष फैलाया है।

होरी भई कि हरी भये लाल कै लाल गुलाल पगी ब्रजबाला।

यहां संदेह अलंकार के कारण कृष्ण तथा गोपी के रंग से लथपथ होने का पूर्ण दृश्य नेत्रों में खिच जाता है।

इतने विवेचन से यह विदित हुआ कि तीन-चार शब्दालंकार और इतने ही अर्थालंकारों में से प्रत्येक के दो-दो तीन-तीन स्थलों को छोड़कर और न तो अन्य अलंकार रसखान की रचना में हैं और न इन्हीं का अधिकता से प्रयोग हुआ है। इनमें से अधिकांश तो बिना प्रयास स्वतः आ गये हैं। इन अलंकारों को देखकर कहा जा सकता है कि ये अलंकार-शास्त्र से परिचित थे किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि इन्होंने इसकी ओर ध्यान ही नहीं दिया। 'शिवसिंहसरोज' में इनका एक छंद है जो वर्तमान किसी संग्रह में नहीं है। उसको देखने से विदित होता है कि कवि ने कठिन परिश्रम करके इन शब्दों को लाकर रक्खा है और इसी कारण उसमें भाषा की थोड़ी विशेषता के अतिरिक्त भाव-द्योतन की कोई शक्ति नहीं है। वह छंद है—

डहडही मोरी मंजु डार सहकार की पै
चहचही चुहिल चहूकित अलीन की।
लहलही लोनी लता लपटी तमालन पै
कहकही तापै कोकिला की काकलीन की॥
तहतही करि 'रसखानि' के मिलन हेत

वहवही बानि तजि मानस मलीन की।
महमही मंद मंद मारुत मिलन तैसी
गहगही खिलनि गुलाब की कलीन की ॥

इसमें डहडही, महमही, चहचही तथा अनुप्रास की विशेषता के अतिरिक्त और क्या है ? यहां अनुप्रास भी उतना अच्छा नहीं लगता जैसा कि इनकी अन्य रचनाओं में अच्छा लगता है। यह तो मस्तिष्क का व्यायाम मालूम होता है। संभव है यह कवित्त रसखान का न हो और यदि हो भी तो हर्ष का विषय है कि इसके अतिरिक्त उनकी और कोई रचना नहीं है। इस छंद में प्रकृति-वर्णन है और वह भी कोई अच्छा वर्णन नहीं है। रसखान ने केवल प्रकृति-वर्णन के हेतु कलम कभी नहीं उठाई। कृष्ण की किसी लीला-वर्णन के साथ प्रकृति का भी कुछ वर्णन कर दिया हो तो कर दिया हो किंतु शुद्ध प्रकृति-वर्णन कहीं नहीं किया, इससे और भी संदेह होता है कि यह रचना रसखान की नहीं है।

भाषा की सुगमता : यदि भाषा की क्लिष्टता तथा सुगमता पर विचार किया जाय तो रसखान की भाषा अत्यंत सुगम दिखाई देती है। उन्होंने बोल-चाल की भाषा का ही प्रयोग किया है। सर्वसाधारण में प्रतिदिन बोले जाने वाले शब्दों को लेकर ही रसखान ने रचना की है। उन्होंने साहित्यिक भाषा और बोलचाल की भाषा को मिलाने का प्रयत्न किया है जो प्रयत्न आजकल कुछ लोगों के द्वारा हो रहा है। इनकी ठेठ भाषा को देखकर यह न समझना चाहिए कि उन्हें शुद्ध तत्सम शब्दों का ज्ञान ही न था। इनकी रची हुई 'प्रेमवाटिका' की भाषा को देखने से पता चलता है कि इन्हें संस्कृत का भी ज्ञान था। 'प्रेम-वाटिका' के दोहों की भाषा अधिक परिमार्जित एवं तत्समबहुला है। निम्नांकित दोहों की भाषा पर ध्यान दीजिए—

काम, क्रोध, मद, मोह, भय, लोभ, द्रोह, मात्सर्य।
इन सबही तें प्रेम है, परे कहत मुनिवर्य ॥

*

मित्र कलत्र सुबंधु सुत, इनमें सहज सनेह।
शुद्ध प्रेम इन में नहीं, अकथ कथा सविसेह ॥

इनकी रचना में निषेध, तिमिर, श्रुति, स्मृति, कामना, दंपति, विवेक, शुद्धाशुद्ध, तरनि-तनूजा तथा पुरंदर ऐसे शब्द प्रयुक्त हुए हैं। इससे विदित होता है कि भाषा की अच्छी योग्यता रखते हुए भी रसखान ने बोलचाल की सरल भाषा को अपनाया है। इनकी रचना में समास-पदावली भी अधिक नहीं है अतः इनकी रीति वैदर्भी कही जा सकती है।

६. हिंदी साहित्य में रसखान का स्थान

ख्याति की दृष्टि से कई प्रकार के कवि होते हैं। एक तो वे जिनकी कविता उन्हीं तक रहती है, दूसरे वे जिनकी कविता उनकी गोष्ठी तक रहती है, तीसरे प्रकार के कवियों की कविता ग्राम या नगर तक और चौथे प्रकार के कवियों की कविता देशव्यापिनी होती है। सम्मान-प्राप्ति की दृष्टि से भी तीन प्रकार के कवि होते हैं। एक तो वे जिनका मान केवल पंडितों में होता है, जनता से उनका कोई संबंध नहीं रहता, जैसे महाकवि केशवदास जी। दूसरे वे जिनका मान जनता में ही अधिक होता है, पंडित-समाज उन्हें कोई महत्त्व नहीं देता, फिर भी सामान्य जनता पर उनका प्रभाव रहता है तथा उनके वचन या पद लोगों के मुँह में रहते हैं जैसे कबीरदास, नानक आदि। तीसरे प्रकार के कवि वे हैं जो पंडितजन और सामान्य जनता दोनों के द्वारा प्रतिष्ठित होते हैं, जैसे गोस्वामी तुलसीदास जी। इन तीसरे प्रकार के कवियों में यह आवश्यक नहीं है कि उनमें पांडित्य या चमत्कार हो, किंतु एक ऐसी बात होनी चाहिए जिससे पंडित समाज भी प्रभावित हो। वह बात है भावों की पूर्ण व्यंजना। यही बात रसखान में पूर्णतया पाई जाती है, इसीसे उनमें कोई विशेष चमत्कार न रहने पर भी उनका आदर पंडितजन और साधारणजन दोनों प्रकार के लोगों में हुआ। यह बात नहीं है कि रसखान में प्रतिभा या क्षमता नहीं थी, वरन् पूर्ण पारंगत होते हुए भी उन्होंने सरलता का मार्ग ग्रहण किया था। वे बनावटी शोभा के पक्षपाती नहीं थे, क्योंकि कृत्रिम शोभा तो कभी न कभी नष्ट भी हो सकती है, किंतु स्वाभाविक शोभा सदा ज्यों की त्यों रहने वाली है। द्वार पर या द्वारपथ पर जो हरे-हरे वृक्ष लाकर खड़े किये जाते हैं और पत्तों की सजावट होती है वह तो दो-एक दिन में सूखकर कुरूपता को

प्राप्त हो जाती है किंतु उसके पास में लगे हुए छोटे-मोटे पौधे या हरी-हरी कोमल घास ज्यों की त्यों सुशोभित रहती है। इसी प्रकार जो काव्य बनावटी सजावट से पूर्ण रहता है वह एक न एक दिन महत्त्वहीन तथा सौंदर्यहीन हो जाता है, किंतु जो काव्य सहज स्वाभाविक सुंदरता लिये रहता है वह नित्य महत्त्वपूर्ण तथा सुंदर रहता है। रसखान इसी प्रकार के कवि थे, उनकी रचना बलात्कृत या परिश्रम-साध्य नहीं विदित होती, वरन् स्वाभाविक रूप में हृदय-स्रोत से निर्झरित-सी लगती है। इसमें संदेह नहीं कि ऐसे कवि सभी भाषाओं में थोड़े होते हैं। बिरले ही ऐसे कवि होते हैं जो पंडितजन और सामान्य जनता दोनों से आदर प्राप्त कर सकें, क्योंकि इसके लिये विशेष व्यक्तित्व की आवश्यकता होती है।

रसखान के कुछ ही पहले नरोत्तमदास जी हुए हैं। 'शिवसिंहसरोज' में उनका जन्म-संवत् १६०२ दिया हुआ है। ये दो कवि अपने ढंग के निराले हैं। रसखान और नरोत्तमदास में एक ही प्रकार का कवित्व पाया जाता है। यद्यपि नरोत्तमदास ने प्रबंध-काव्य लिखा है फिर भी काव्यगत विशेषताएं, भाषा की सफ़ाई, प्रवाह और कवित्त-सवैयों की परिपाटी में दोनों में काफ़ी समानता है। नरोत्तमदास के अतिरिक्त और एक भी कवि ऐसा नहीं है जिसे रसखान की श्रेणी में रख सकें। कविशिरोमणि तुलसीदास तथा सूरदास में फिर भी कुछ न कुछ चमत्कार आ गया है, क्योंकि वे सभी श्रेणियों के लोगों को प्रसन्न रखना चाहते थे, उन्हें आशंका थी कि चमत्कारवादी अपने लिये कुछ मसाला न पाकर कहीं नाक-भौं न सिकोड़ने लगें। रसखान को इस बात की परवाह न थी, उनका लक्ष्य सब को प्रसन्न करना न था, किसी दूसरी विशेषता के कारण रसखान के प्रयत्न न करने पर भी यदि सभी प्रसन्न हो जायँ तो बात ही दूसरी है।

एक दृष्टि से हिंदी साहित्य में रसखान का स्थान विशेष महत्त्व का है और वह दृष्टि है विस्मृतप्राय काव्य-परंपरागत रचना-शैली को नवजीवन देना। ब्रह्म और भाटों की कवित्त-सवैया वाली जो परंपरा आदिकाल से चली आती थी, वह भक्तिकाल में आकर लोप-सी हुई जा रही थी। रामभक्ति-शाखा के अंतर्गत तो तुलसीदास जी ने कवितावली जैसा ग्रंथ लिखा भी, किंतु कृष्णभक्ति-शाखा में गीत तथा पदों का ही अधिक प्रचार रहा। सभी कवि गीत तथा पद बनाने लगे थे। ऐसे

समय में जब कि सारा कृष्ण-काव्य गीतों में प्रस्तुत हो रहा था और पर्याप्त मात्रा में हो चुका था, रसखान ने कवित्त-सवैयों में अपना कृष्ण प्रेम व्यक्त किया। प्रचलित मार्ग को छोड़कर पीछे छूटे हुए मार्ग को ग्रहण करना उनकी स्वच्छंदता का द्योतक है। सूरदास के पदों को देखकर एक प्रकार की धारणा-सी बन चली थी कि रूप-माधुर्य तथा मधुर लीलाओं का वर्णन केवल पदों के द्वारा ही उचित रूप से हो सकता है, किंतु रसखान ने दिखा दिया कि कवित्त-सवैया में भी वही छटा, वही रस और वही सुघराई आ सकती है जो पदों के द्वारा आती है। इनके सवैयों में लालित्य की कमी नहीं है। कहीं-कहीं तो यह कहना पड़ता है कि सवैया में व्यक्त होने के कारण ही इस भाव का पूर्ण साधारणीकरण हो सका है, पद में होता तो वह बात न आती। इन्हीं के द्वारा कवित्त-सवैयों की पुनरुद्धार की हुई परिपाटी पर आगे घनानंद तथा पद्माकर आदि श्रेष्ठ कवि चले, जिन्होंने कवित्त-सवैयों की ऐसी धाक जमा दी कि अब भी कवित्त-सवैयों में ही समस्यापूर्ति करने वालों की कमी नहीं रहती।

रसखान की भक्ति भी एक विशेष प्रकार की है। इनकी भक्ति-भावना और अन्य भक्त-कवियों की भक्ति-भावना में अंतर है। अन्य भक्त-कवि ब्रह्म की महत्ता तथा अपनी लघुता का वर्णन करने वाले थे, जैसे 'हौं प्रभु सब पतितन कौ टीको' अथवा 'मोसम कौन कुटिल मति कामी' आदि। सिद्धांत की दृष्टि से सबने अपने को पापी तथा प्रभु को पतित-पावन कहकर अपने उद्धार की प्रार्थना की है, किंतु काव्यपद्धति के भीतर इस कथन की रमणीयता प्रतिपादन करने का प्रयत्न किसी ने नहीं किया। इस प्रकार का कथन भक्तों के बीच परंपरागत चला आता हुआ मालूम होता है। किंतु रसखान ने इस कथन को केवल सिद्धांत की दृष्टि से न कहकर उसमें एक रमणीयता उत्पन्न कर दी है। वे बिल्कुल कृष्णमय होना चाहते थे, इसका उल्लेख उनकी भक्ति-भावना के प्रसंग में विस्तार से किया जा चुका है। उसीका यहां पुनः उल्लेख इस अभिप्राय से किया जाता है कि यह उनकी एक ऐसी विशेपता है जो उन्हें अन्य भक्तों से अलग स्थान दिलाती है। तुलसीदास जी का कथन देखिए 'जेहि जोनि जन्मौं कर्मबस तहँ रामपद अनुरागऊं', रसखान का कथन है 'मानुप हौं तो वही रसखानि...' इन दोनों कथनों में अंतर

स्पष्ट लक्षित होता है। गोस्वामी जी प्रत्येक जन्म में राम-पद-प्रेम चाहते हैं और रसखान प्रत्येक जन्म में, चाहे मनुष्य हों, पशु हों, पक्षी हों, पत्थर हों, कुछ भी हों, कृष्ण का सामीप्य चाहते हैं। रसखान कृष्ण से पृथकत्व की कल्पना भी नहीं कर सकते थे, वे कृष्ण के स्वरूप में लय हो जाना चाहते थे।

अपने स्वरूप का लय जितना रसखान ने किया है, उतना हिंदू-मुसलमान कोई भी नहीं कर सका। यों तो अनेक मुसलमान हिंदू देवताओं के भक्त हुए हैं, कवि भी हुए हैं किंतु जिस प्रकार मुसलमानीपन का त्याग रसखान ने किया है उस प्रकार अन्य कोई मुसलमान नहीं कर सका। हिंदू-संस्कृति-प्रेमी जायसी से भी विदेशीपन नहीं निकल सका। अनेक मुसलमानों ने मन लगाकर कृष्ण का गुण-गान किया किंतु अपनी रंगत न छोड़ सके। रसखान ही ऐसे हुए हैं जो किसी भी हिंदू-भक्त से कम नहीं मालूम होते। यदि बताया न जाय कि वे मुसलमान थे तो उनके सवैयों को सुनकर कोई विश्वास नहीं कर सकता कि वे हिंदू नहीं थे। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने जो कहा है 'इन मुसलमान हरिजनन पै कोटिन हिंदू वारिये', वह इन्हीं रसखान को ही विशेषरूप से दृष्टि में रखकर कहा है। उन मुसलमान हरिजनन में वे रसखान को ही प्रधानता देते थे। इस दृष्टि से ये मुसलमान हिंदी-कवियों से पृथक् और श्रेष्ठ स्थान रखते हैं। अपने अहंकार का लोप करने के कारण हिंदू-मुसलमान सभी भक्त-कवियों में एक विशेष स्थान के अधिकारी हैं, क्योंकि कविता और भक्ति दोनों चाहती हैं कि कवि तथा भक्त अपने अहंकार का लोप कर दे।

इनके काव्य में विशेष महत्व की वस्तु शब्द-माधुर्य है। इस शब्द-माधुर्य का इतना प्रभाव पड़ा कि सरस कविता सुनने के इच्छुक कहने लगे 'कोई रसखान सुनाओ'। इनके शब्द-माधुर्य के कारण इनकी कविता इतनी सरस हो गई कि किसी भी सरस कविता को 'रसखान' के नाम से पुकारने लगे। रमणीयता और सौंदर्य-बोध का योग इनकी कविता में बड़ा ज़बर्दस्त है, इसी योग के कारण इनकी कविता में सरसता तथा आकर्षणशक्ति आ गई है।

भिन्न-भिन्न दृष्टियों से यह दिखलाया जा चुका है कि किस प्रकार रसखान हिंदी साहित्य में एक विशेष और पृथक् स्थान रखते हैं। ख्याति की दृष्टि से,

पंडितजन और साधारण जनता दोनों में प्रतिष्ठा पाने की दृष्टि से, भाव-व्यंजना की दृष्टि से, स्वाभाविकता की दृष्टि से, प्रचलित काव्य-रचना-पद्धति को छोड़कर प्राचीन कवित्त-सवैया की परंपरा ग्रहण करने की दृष्टि से, भक्ति-भावना की दृष्टि से तथा विदेशीपन के त्याग की दृष्टि से रसखान हिंदी साहित्य में एक विशेष महत्व-पूर्ण स्थान के अधिकारी हैं। ये हिंदी-काव्य-गगन में सबसे पृथक् ऐसे ज्योतिष्पिंड हैं, जिनकी ज्योति तब तक भारतखंड को प्रकाशित करती रहेगी जब तक हिंदी साहित्य का अस्तित्व रहेगा।

कवित्त-सवैये

कहा 'रसखानि' सुखसंपति सुमार कहा,
कहा महा जोगी ह्वै लगाये अंग छार को।
कहा साधे पंचानल कहा सोये बीच जल,
कहा जीत लीने राज सिंधु आर-पार को॥
जप बार बार तप संजम अपार व्रत,
तीरथ हजार अरे बूझत लबार को।
कीन्हों नहीं प्यार नहीं सेयो दरबार, चित्त—
चाह्यो न निहारयो जो पै नंद के कुमार को॥१॥

कंचन के मंदिरनि दीठि ठहराति नाहिं,
सदा दीपमाल लाल-मानिक उजारे सौं।
और प्रभुताई सब कहां लौं बखानौं
प्रतिहारन की भीर भूप टरत न द्वारे सौं॥
गंगा जी में न्हाइ मुक्ताहलहू लुटाइ, वेद—
बीस बेर गाइ ध्यान कीजत सकारे सौं।
ऐसे ही भये तो कहा कीन्हौ 'रसखानि' जो पै,
चित्त दै न कीन्ही प्रीति पीतपटवारे सौं॥२॥

सुनिए सब की कहिए न कछू, रहिए इमि या भव-बागर में।
करिए व्रत नेम सचाई लिये, जिनतें तरिए भव-सागर में॥
मिलिए सब सों दुरभाव बिना, रहिए सतसंग उजागर में।
'रसखानि' गुविन्दहिं यों भजिए, जिमि नागरि को चित गागर में॥३॥

प्रान वही जु रहैं रिझि वा पर, रूप वही जिहिं वाहि रिझायो।
सीस वही जिहिं वे परसे पग, अंग वही जिहिं वा परसायो॥

दूध वही जु दुहायो री वाही ने, दही सु दही जु वही ढरकायो।
और कहां लौं कहौं 'रसखानि', सुभाव वही जु वही मन भायो ॥४॥
संपति सों सकुचावै कुबेरहिं, रूप सों देत चुनौती अनंगहिं।
भोग लखे ललचाइ पुरंदर, जोग सों गंग लई धरि मंगहिं॥
ऐसो भयो तो कहा 'रसखानि', रसै रसना जिहिं मुक्ति तरंगहिं।
जो चित वाके न रंग रँग्यो, जु रह्यो रँगि राधिका रानी के रंगहिं ॥५॥
कंचन-मंदिर ऊँचे बनाइ कै, मानिक लाय सदा झमकावै।
प्रातहिं ते सगरी नगरी, गजमोतिन ही की तुलानि तुलावै॥
पालै प्रजानि प्रजापति सों बन, संपति सों मघवाहि लजावै।
ऐसो भयो तो कहा 'रसखानि', जु साँवरे ग्वाल सों नेह न लावै ॥६॥
बैन वही उनको गुन गाइ, औ कान वही उन बैन सों सानी।
हाथ वही उन गात परै, अरु पाँय वही जु वही अनुजानी॥
जान वही उन प्रान के संग, औ मान वही जु करे मनमानी।
त्यों 'रसखानि' वही रसखानि, जु है रसखानि सो है रसखानी ॥७॥
इक ओर किरीट लसै दुसरी दिसि, नागन के गन गाजत री।
मुरली मधुरी धुनि ओठन पै, उत डामर नाद सों बाजत री॥
'रसखानि' पितंबर एक कँधा पर, एक बघंबर छाजत री।
अरी देखहु संगम लै बुड़की, निकसे यह भेख बिराजत री ॥८॥
यह देख धतूरे के पात चबात, औ गात सौं धूली लगावत हैं।
चहुँ ओर जटा अँटकी लटकैं, सुभ सीस फनी फहरावत हैं॥
'रसखानि' जेई चितवैं चित दै, तिनके दुख दुंद भगावत हैं।
गज खाल कपाल की माल बिसाल, सो गाल बजावत आवत हैं ॥९॥
बैद की औषधि खाइ नहीं, न करै वह संजम री सुन मोसें।
तेरोई पानी पियें 'रसखानि', सजीवन जानि लहै सुख तोसें॥
ए री सुधामयी भागीरथी, सब पथ्य कुपथ्य बनैं तुहि पोसें।
आक धतूरो चबात फिरै, बिष खात फिरै सिव तेरे भरोसें ॥१०॥

द्रौपदी औ गनिका गज गीध, अजामिल जो कियो सो न निहारो।
गौतम - गेहनी कैसे तरी, प्रह्लाद को कैसे हर्‌यो दुख भारो॥
काहे को सोच करै 'रसखानि', कहा करि है रविनंद बिचारो।
कौन की संक परी है, जु माखन, चाखनहार सो राखनहारो॥११॥
देस बिदेस के देखे नरेसन, रीझि के कोऊ न बूझ करैगो।
तातें तिन्हैं तजि, लौटि पर्‌यों गुनि, को गुन औगुन गाँठि परैगो॥
बाँसुरीवारो बड़ो रिझवार है, जो कहुँ नैकु सुढार ढरैगो।
तौ वह लाड़लो छैल अहीर को, पीर हमारे हिये की हरैगो॥१२॥
मानुष हौं तो वही 'रसखानि', बसौं व्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पशु हौं तौ कहा बस मेरो, चरौं नित नंद की धेनु मँझारन॥
पाहन हौं तौ वही गिरि को, जो धर्‌यो कर छत्र पुरंदर धारन।
जो खग हौं तौ बसेरो करौं नित, कालिंदी कूल कदंब की डारन॥१३॥
जो रसना रस ना बिलसै, तेहि देहु सदा निज नाम उचारन।
मो कर नीकी करैं करनी, जु पै कुंज कुटीरन देहु बुहारन॥
सिद्धि समृद्धि सबै 'रसखानि', लहौं व्रज रेणुका अंग सँवारन।
खास निवास मिलै जु पै तौ वही, कालिंदी कूल कदंब की डारन॥१४॥
सेस, सुरेस, दिनेस, गनेस, प्रजेस, धनेस, महेस मनाओ।
कोऊ भवानी भजौ, मन की, सब आस सबै विधि जाय पुराओ॥
कोऊ रमा भजि लेहु महाधन, कोऊ कहूं मन वांछित पाओ।
पै 'रसखानि' वही मेरो साधन, और त्रिलोक रहो कि नसाओ॥१५॥
या लकुटी अरु कामरिया पर, राज तिहूं पुर को तजि डारौं।
आठहुँ सिद्ध नवो निधि को सुख, नंद की गाय चराय बिसारौं॥
'रसखानि' कबौं इन आँखिनतें, व्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिनहूं कलधौत के धाम, करील के कुंजन ऊपर वारौं॥१६॥
लोग कहैं व्रज के 'रसखानि', अनंदित नंद जसोमति जू पर।
छोहरा आज नयो जनम्यो तुम, सो कोऊ भाग भर्‌यो नहिं भू पर॥

वारक दाम सँवार करौ, धनीपानी पियौ सु उतार ललू पर।
नाचत रावरो लाल गुपाल हो, काल से ब्याल कपाल के ऊपर ॥१७॥
आजु गई हुती भोरही हौं, 'रसखानि' रई कहि नंद के भौनहिं।
वाको जियौ जुग लाख करोर, जसोमति को सुख जात कह्यो नहिं॥
तेल लगाइ, लगाइ कै अंजन, भौंह बनाइ, बनाइ डिठौनहिं।
डारि हमेल निहारति आनन, वारति ज्यौं चुचकारति छौनहिं ॥१८॥
धूर भरे अति सोभित स्याम जू, तैसी बनी सिर सुंदर चोटी।
खेलत खात फिरैं अँगना, पग पैजनियां कटि पीरी कछोटी॥
वा छवि को 'रसखानि' बिलोकत, वारत काम कला निज कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी, हरि हाथ सौं लै गयो माखन रोटी ॥१९॥

आपनो सो ढोंटा हम सबही को जानत हैं,
दोऊ प्रानी सबहीं के काज नित धावहीं।
ते तौ 'रसखानि' अब दूर ते तमासो देखैं,
तरनि-तनूजा के निकट नहिं आवहीं॥
आये दिन बात अनहितुन सों कहौं कहा,
हितू जेऊ आये तेऊ लोचन दुरावहीं।
कहा कहौं आली खाली देत सब ठाली,
हाय मेरे बनमाली कौं न काली ते छुड़ावहीं ॥२०॥

गावैं गुनी गनिका गंधर्व औ, सारद सेस सबै गुन गावत।
नाम अनंत गनंत गनेस ज्यों, ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावत॥
जोगी जती तपसी अरु सिद्ध, निरंतर जाहि समाधि लगावत।
ताहि अहीर की छोहरियां, छछिया भरि छाछ पै नाच नचावत ॥२१॥
सेस गनेस महेस दिनेस, सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं।
जाहि अनादि अनंत अखंड, अछेद अभेद सुवेद बतावैं॥
नारद लै सुक व्यास रटैं, पचि हारे तऊ पर पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियां, छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं ॥२२॥

शंकर से सुर जाहि भजैं, चतुरानन ध्यान में काल बितावैं।
नेक हिये में जो आवत ही, 'रसखानि' महाजड़ विज्ञ कहावैं॥
जा पर सुंदर देवबधू, नहिं वारत प्रान अबार लगावैं।
ताहि अहीर की छोहरियां, छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥२३॥
गुंज गरे, सिर मोर पखा, अरु चाल गयंद की मो मन भावै।
सांवरो नंदकुमार सबै, ब्रजमंडली मैं ब्रजराज कहावै॥
सांज समाज सबै सिरताज, औ छाज की बात नहीं कहि आवै।
ताहि अहीर की छोहरियां, छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥२४॥
ब्रह्म मैं ढूँढ़्यो पुरानन गानन, वेद रिचा सुनी चौगुने चायन।
देख्यो सुन्यो न कहूं कबहूं, वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन॥
टेरत हेरत हारि परयो, 'रसखानि' बतायो न लोग लुगायन।
देखी दुरो वह कुंज कुटीर मैं, बैठो पलोटत राधिका पायन॥२५॥
कंस के कोप की फैल गई, जब ही ब्रज मंडल बीच पुकार सी।
आय गयो तब ही कछनी, कसिकै नटनागर नंदकुमार री॥
द्विरद को रद खैंचि लियो, 'रसखानि' तबै मन आई बिचार सी।
लागी कुटौर लई लखि तोर, कलंक तमाल तें कीरति डार सी॥२६॥

ग्वालन संग जैबो औ चरैबो गाय उनहीं संग,
हेरिं तान गैबो सोचि नैन करकत हैं।
ह्यां के गजमुक्तामाल वारौं गुंजमालनि पै,
कुंज सुधि आये हाय प्रान धरकत हैं॥
गोबर को गारो सु तो मोहिं लगै प्यारो,
नाहिं भावैं ये महल जे जटित मरकत हैं।
मंदर ते ऊँचे कहा मंदिर हैं द्वारिका के,
ब्रज के खिरक मेरे हिये खरकत हैं॥२७॥
गोरज बिराजै भाल लहलही बनमाल,
आगे गैया पाछे ग्वाल गावै मृदुतान री।

जैसी धुनि बाँसुरी की मधुर मधुर, तैसी
बंक चितवनि मंद मंद मुसकान री ॥
कदम विटप के निकट तटनी के तट,
अटा चढ़ि देखु पीतपट फहरानि री।
रस बरसावै तन तपन बुझावै, नैन
प्राननि रिझावै वह आवै 'रसखानि' री ॥२८॥

आयो हुतो नियरे 'रसखानि', कहा कहूं तू न गई वह ठैयां।
या ब्रज की वनिता जिहिं देखिकै, वारहिं प्राननि लेहिं वलैया ॥
कोऊ न काहू की कानि करै, कछु चेटक सो जु कर्‌यो जदुरैया।
गाइगो तान जमाइगो नेह, रिझाइगो प्रान चराइगो गैया ॥२६॥

भौंह भरी वरुनी सुथरी, अतिसै अधरानि रँग्यो रँग रातो।
कुंडल लोल कपोल महाछवि, कुंजनि तें निकस्यो मुसकातो ॥
'रसखानि' लखे मन खोय गयो, मग भूलि गई तन की सुधि सातो।
फूटि गयो सिर को दधि भाजन, टूटिगो नैननि लाज को नातो ॥३०॥

दोउ कानन कुंडल, मोर पखा, सिर सोहै दुकूल नयो चटको।
मनिहार गरे सुकुमार, धरे, नट भेस अरे पिय को टटको ॥
सुभ काछनी वैंजनी, पैजनी, पाँयन आवन में न लगै झटको।
वह सुंदर को 'रसखानि' अली, जु गलीन में आइ अबै अँटको ॥३१॥

आजु सखी नँदनंदन री, तकि ठाढ़ो है कुंजनि की परिछाहीं।
नैन बिसाल की जोहन को, सर वेधि गयो हियरा जिय माहीं ॥
घायल घूमि खुमार गिरी, 'रसखानि' सँभार रह्यो तन नाहीं।
ता पर वा मुसकानि की डौंड़ी, वजी ब्रज मैं अबला कित जाहीं ॥३२॥

रंग भर्‌यो मुसकात लला, निकस्यो कल कुंजनि तें सुखदाई।
मैं तबहीं निकसी घर तें, तकि नैन बिसाल की चोट चलाई ॥
'रसखानि' सो घूमि गिरी धरती, हरिनी जिमि बान लगे गिरि जाई।
टूटि गयो घर को सब बंधन, छूटिगो आरज-लाज-बड़ाई ॥३३॥

वह गोधन गावत गाइन मैं, जब तें इहि मारग ह्वै निकस्यो।
तब तें कुलकानि कितीयो करौ, नहिं मानत पापी हियो हुलस्यो॥
अब तौ जु भई सुभई, कहा होत है, लोग अजान हँस्यो सु हँस्यो।
कोऊ पीर न जानत, जानत सो, जिनके हिय मैं रसखानि बस्यो॥३४॥

आजु री नंदलला निकस्यो, तुलसीवन तें बनि कै मुसकातो।
देखे बनै, न बनै कहते कछु, सो सुख जो मुख मैं न समातो॥
हौं 'रसखानि' बिलोकिबे को, कुलकानि तजी, जु भयो हिय मातो।
आइ गई अलबेली अचानक, ए भटू लाज को काज कहा तो॥३५॥

बेनु बजावत गोधन गावत, ग्वालन के सँग गोमधि आयो।
बाँसुरी में उन मेरोई नाम लै, ग्वालन के मिस टेरि सुनायो॥
ए सजनी सुन सास के त्रासन, बाहर ही के उसाँस न आयो।
कैसी करौं 'रसखानि' तहीं चित, चैन नहीं, चित चोर चुरायो॥३६॥

तेरी गलीनि में जा दिन तें, निकस्यो मन मोहन गोधन गावत।
ये ब्रज लोग सो कौन सी बात, चलाइ कै जो नहिं नैन चलावत॥
वे 'रसखानि' जो रीझिगे नेकु, तौ रीझि कै क्यों न बनाय रिझावत।
बावरी जो पै कलंक लग्यो, तौ निसंक ह्वै काहे न अंक लगावत॥३७॥

दूर तें आइ दिखाइ अटा, चढ़ जाइ, गह्यो तहां दूर तें बारो।
चित्त कहूं, चितवै कितहूं ही, कान्ह को चाहि करै चखचारो॥
'रसखानि' कहै यह बीच अचानक, जाइ सिढ़ी चढ़ि सास पुकारो।
सूखि गई, सुकुमार हियो, हनि सैननि सो कह्यो कान्ह सिधारो॥३८॥

वह नंद को साँवरो छैल अली, अब तो अति ही इतरान लग्यो।
नित घाटन बाटन कुंजन में, मोहिं देखत ही नियरान लग्यो॥
'रसखानि' बखान कहा करिए, तकि सैननि सों मुसकान लग्यो।
तिरछी बरछी सम मारत है, दृग बान कमान सु कान लग्यो॥३९॥

आवत हैं बन तैं मनमोहन, गायन संग लसैं ब्रजग्वाला।
बेनु बजावत गावत गीत, अमीत इतै करिगो कछु ख्याला॥

हेरत टेरि थकी चहुँ ओर तें, झाँकि झरोखनि तें ब्रजबाला।
देखि सुआनन को 'रसखानि', तज्यो सब द्योस को ताप कसाला ॥४०॥

चीर की चटक औ लटक नवकुंडल की,
भौंह की मटक नेक आँखिन दिखाउ रे।
मोहन सुजान गुन रूप के निधान, फेरि
बाँसुरी बजाय तनु तपन सिराउ रे॥
ए हो बनवारी बलिहारी जाउँ तेरी, आजु
मेरी कुंज आय नेक मीठी तान गाउ रे।
नंद के किसोर चित्तचोर मोर पंखवारे,
बंसी वारे साँवरे पियारे इत आउ रे ॥४१॥

एक समै जमुना जल मैं, सब मज्जन हेत धँसीं ब्रज गोरी।
त्यों 'रसखानि' गयो मन मोहन, लै कर चीर कदंब की छोरी॥
न्हाय जबै निकसीं बनिता, चहुँ ओर चितै चित रोस करयो री।
हार हियो, भरि भावन सों, पट दीने लला बचनामृत बोरी ॥४२॥

जात हुती जमुना जल को, मनमोहन घेरि लियो मग आइ कै।
मोद भरयो लपटाय लयो, पट घूँघट टारि दियो चित चाय कै॥
और कहा 'रसखानि' कहौं, मुख चूमत घातन बात बनाय कै।
कैसे निभै कुल कानि, रही, हिये साँवरी मूरति की छवि छाय कै ॥४३॥

ब्याही अनब्याही ब्रजमाहीं सब चाही, तासों
दूनी सकुचाहीं दीठि परै न जुन्हैया की।
नेकु मुसकान 'रसखान' की बिलोकत ही,
चेरी होत एक बार कुंजनि फिरैया की॥
मेरो कह्यो मान अंत मेरो गुन मानिहै री,
प्रात खात जात, न सकात, सौंह भैया की।
माइ की अँटक तौ लौं, सासु की हटक तौ लौं,
देखी न लटक जौ लौं साँवरे कन्हैया की ॥४४॥

बारहीं गोरस बेंचु री आजु, तू माइ के मूड़ चढ़ै कत मौड़ी।
आवत जात लौं होयगी साँझ, भटू जमुना भतरौंड़ लौं औंड़ी॥
ऐसे में भेंटत ही 'रसखानि', ह्वै हैं अँखियां बिन काज कनौड़ी।
ए री बलाइ ज्यौं जाइगी बाजि, अबै ब्रजराज सनेह की डौंड़ी॥४५॥
हेरति बारहिं बार उतै, तुव बावरी बाल कहा धौं करैगी।
जो कहूं देखि पर्‌यो 'रसखानि', तौ क्यों हू न बीर री धीर धरैगी॥
मानि है काहू की कानि नहीं, जब रूप ठगी हरि रंग ढरैगी।
याते कहौं सिख मान भटू, यह हेरनि तेरे ही पैंड़ परैगी॥४६॥
मेरी सुनो, मति जाइ अली, उहां जौनी गली हरि गावत है।
हरि लैहैं बिलोकत प्रानन कों, पुनि गाढ़ परै घर आवत है॥
उन तान की तान तनी ब्रज मैं, 'रसखान' सयान सिखावत है।
तकि पांव धरो रपटाय नहीं, वह चारो सो डारि फँदावत है॥४७॥
बाँकी कटाछ चितैबो सिख्यो, बहुधा बरज्यो हित कै हितकारी।
तू अपने ढिग की 'रसखानि', सिखावन दै दिन हौं पचिहारी॥
कौन सी सीख सिखी सजनी, अजहूं तजि दै बलिजाउं तिहारी।
नंद के नंदन फंद कहूं, परि जैहै अनोखी निहारनि हारी॥४८॥
बैरिनि तौ बरजी न रहै, अब हीं घर बाहिर बैर बढ़ैगो।
टोना सो नंद-ढुटौना पढ़ै, सजनी तिहिं देखि बिसेख बढ़ैगो॥
सुनि है सखि गोकुल गाँव सबै, 'रसखानि' तबै सब लोग रढ़ैगो।
बैस चढ़े घर ही रह बैठि, अटा न चढ़े बदनाम चढ़ैगो॥४९॥
मेरो सुभाव चितैबे को माइ री, लाल निहारि कै बंसी बजाई।
वा दिन तें मोहिं लागी ठगौरी सी, लोग कहैं कोई बावरी आई॥
यों 'रसखानि' घिर्‌यो सिगरो ब्रज, जानत हैं जिय की जियराई।
जो कोऊ चाहै भलौ अपनौ, तौ सनेह न काहू सों कीजियो माई॥५०॥
तू गरबाइ कहा झगरै, 'रसखानि' तेरे बस बावरो होसै।
तौहूं न छाती सिराइ अरी, करि झार इतै उतै बालन कोसै॥

लालहि लाल किये अँखियां, लहिं लालहिं काल सों क्यों भई रोसै।
ऐ विधिना तू कहा धौं पढ़ी, व्रस राख्यो गुपालहि कौन भरोसै ॥५१॥

आई खेलि होरी व्रजगोरी वनवारी संग,
अंग अंग रंगनि अनंग सरसाइगो।
कुंकुम की मार वा पै रंगनि उछार उड़ै,
वुक्का औ गुलाल लाल, लाल हरसाइगो॥
छोड़ै पिचकारिन धमारिन विगोइ छोड़ै,
तोड़ै हिय हार धार रंग वरसाइगो।
रसिक सलोनो रिझवार 'रसखानि' आजु,
फागुन में अवगुन अनेक दरसाइगो॥५२॥

गोकुल को ग्वाल एक चौमुँह की ग्वालिन सों,
चाँचरि रचाइ अति धूमहिं मचाइगो।
हियो हुलसाय 'रसखानि' तान गाय बाँकी,
सहज सुभाइ सब गाँव ललचाइगो॥
पिचका चलाइ, सब जुवती भिजाइ, लोल
लोचन नचाइ उर-पुर में समाइगो।
सासहिं तचाइ, गोरी नंदहि नचाइ,
मोरी बैरिनि सँचाइ गोरी मोहि सकुचाइगो॥५३॥

खेलत फाग सुभाग भरी, अनुरागहिं लालन कों धरि कै।
मारत कुंकुम केसर के, पिचकारिन में रँग को भरि कै॥
गेरत लाल गुलाल लली, मनमोहिनी मौज मिटा करि कै।
जात चली 'रसखानि' अली, मदमस्त मनी मन कों हरि कै॥५४॥

आवत लाल गुलाल लिये, मग सूने मिली इक नारि नवीनी।
त्यों 'रसखानि' लगाइ हिये, भटू मौज कियो मन माहिं अधीनी॥
सारी फटी सुकुमारी हटी, अँगिया दरकी सरकी रँग भीनी।
लाल गुलाल लगाइ, लगाइ कै अंक, रिझाइ विदा करि दीनी॥५५॥

लीने अबीर भरे पिचका, 'रसखानि' खड़्यो बहु भाव भरो जू।
मार से गोपकुमार कुमार वे, देखत ध्यान टरो, न टरो जू॥
पूरब पुन्यनि दाँव पर्‌यो अब, राज करौ उठि काज करो जू।
अंक भरौ निरसंक उन्हें, इहि पाख पतिव्रत ताख धरो जू॥५६॥
जाहु न कोऊ सखी जमुना जल, रोकै खड़ो मग नंद को लाला।
नैन नचाइ चलाइ चितै, 'रसखानि' चलावत प्रेम को भाला॥
मैं जु गई हुती बैरन बाहिर, मेरी करी गति टूटिगो माला।
होरी भई कै हरी भये लाल, कै लाल गुलाल पगी ब्रज बाला॥५७॥
फागुन लाग्यो सखी जब तें, तब तें ब्रजमंडल धूम मच्यो है।
नारि नवेली बचैं नहिं एक, बिसेख यहै सब प्रेम अच्यो है॥
साँझ सकारे वही 'रसखानि', सुरंग गुलाल लै खेल रच्यो है।
को सजनी निलजी न भई, अरु कौन भटू जिहिं मान बच्यो है॥५८॥
जानत हैं न कछू हम ह्यां, उन ह्यां पढ़ि मंत्र कहा धौं दयो है।
साँची कहैं जिय में निज जानि कै, जानत हौ जस कैसो लयो है॥
'रसखानि' यहै सुनि कै गुनि कै, हियरा सत टूक ह्वै फाटि गयो है।
लोग लुगाई कहैं ब्रज माहिं, अरे हरि चेरी को चेरो भयो है॥५९॥
होती जु पै कुबरी ह्यां सखी, भरि लातन मूका बकोटती केती।
लेती निकाल हिये की सबै, नक छेदि कै कौड़ी पिराइ कै देती॥
ऐसो नचावती नाच वा राँड को, लाल रिझावन को फल पेती।
सेती सदा 'रसखानि' लिये, कुबरी के करेज में सूल यों भेती॥६०॥
जानैं कहा हम मूढ़ सबै, समुझी न तबै जबही बन आई।
सोचत हैं मन ही मन में, अब कीजै कहा बतियां जगवाई॥
नीचो भयो ब्रज को सब सीस, मलीन भई 'रसखानि' दुहाई।
चेरी को चेटक देखहु री, हरि चेरो कियो धौं कहा पढ़ि माई॥६१॥
काहू सों माई कहा कहिये, सहिये सु जोई 'रसखानि' सहावै।
नेम कहा जब प्रेम कियो, अब नाचिये सोई जो नाच नचावै॥

चाहति हैं हम और कहा सखि, क्यों हूं कहूं पिय देखन पावैं।
चेरिय सों जु गुपाल रच्यो तौ, चलौ री सबै मिलि चेरी कहावैं ॥६२॥
सार की सारी सो भारी लगै, धरिहैं कहां सीस बघंबर दैया।
दासी जु सीख दई सु दई, पै लई गहि क्यों 'रसखानि' कन्हैया ॥
जोग गयो कुबजा की कलान मैं, हो कब ऐहैं जसोमति-छैया।
हा हा न ऊधो कुढ़ाबो हमैं, अबहीं कहि दे ब्रज बाजै बधैया ॥६३॥
छीर जो चाहत चीर गहे, ए जू लेहु न केतक छीर अँचैहो।
चाखन के हित माखन माँगत, खाहु न माखन केतिक खैहौ ॥
जानत हौं जिय की 'रसखानि', सु काहे को एतिक बात बढ़ैहौ।
गोरस के मिस जो रस चाहत, सो रस कान्ह जू नेकु न पैहौ ॥६४॥
नागर छैल ह्वै गोकुल मैं मग, रोकत संग सखा ढिग तैहैं।
जाहि न ताहि दिखावत आँखि, सु कौन गई अब तोसों करैहैं ॥
हाँसी मैं हार हर्‌यो 'रसखानि' जू, जो कहुँ नेकु तगा टुटि जैहै।
एक ही मोती के मोल लला, सिगरे ब्रज हाटहि हाट बिकैहैं ॥६५॥
दानी भये नये माँगत दान, सुनै जु पै कंस तौ बाँधि कै जैहौ।
रोकत हौ मग में 'रसखानि', पसारत हाथ, कछू नहिं पैहौ ॥
टूटे छरा, बछरादिक गोधन, जो धन है सु सबै धर देहौ।
जैहै अभूषन काहू सखी को तो, मोल छला के लला न बिकैहौ ॥६६॥
आज महूं दधि बेचन जात ही, मोहन रोक लियो मग आयो।
माँगत दान में आन लियो, सु कियो निलजी रस जोवन खायो ॥
काह कहूं सिगरी री बिथा, 'रसखानि' लियो हँसि कै मुसकायो।
पाले परी मैं अकेली लली, लला लाज लियो सु कियो मन भायो ॥६७॥

अधर लगाय रस प्याय बाँसुरी बजाय,
मेरो नाम गाय हाय जादू कियो मन में।
नटवर नवल सुघर नँदनंदन ने
करि कै अचेत, चेत हरि कै जतन में ॥

झटपट उलट पुलट पट परिधान
जान लागीं लालन पै सबै बाम बन में।
रस रास सरस रँगीलो 'रसखानि' आनि
जानि जोर जुगुति बिलास कियो जन में ॥६८॥

कानन दै अँगुरी रहिहौं, जबहीं मुरली धुनि मंद बजैहै।
सोहनी तानन सों 'रसखानि', अटा चढ़ि गोधन गैहै तो गैहै॥
टेरि कहौं सिगरे ब्रजलोगनि, काल्हि कोऊ कितना समुझैहै।
माइ री वा मुख की मुसकान, सम्हारि न जैहै न जैहै न जैहै॥६६॥

मोरपखा सिर ऊपर राखि हौं, गुंज की माल गरे पहिरौंगी।
ओढ़ि पितंबर लै लकुटी, बन गावत गोधन संग फिरौंगी॥
भावतो वोहि मेरो 'रसखानि' सों, तेरे कहे, सब स्वाँग करौंगी।
पै मुरली मुरलीधर की, अधरान धरी अधरा न धरौंगी॥७०॥

समझी न कछू अजहूं हरि सों, ब्रज नैन नचाइ नचाइ हँसै।
नित सास की सीरी उसासनि सों, दिन ही दिन माइ की कांति नसै॥
चहुँ ओर बबा की सौं सोर सुने, मन मेरेऊ आवत रीस कसै।
पै कहा कहौं वा 'रसखानि' विलोकि, हियो हुलसै हुलसै हुलसै॥७१॥

प्रेम पगे जु रँगे रँग साँवरे, मानैं मनाये न लालची नैना।
धावत हैं उतही जित मोहन, रोके रुकैं नहिं घूँघट ऐना॥
कानन को कल नाहिं परे, सखी प्रेम सों भीजे सुने बिन बैना।
'रसखानि' भई मधु की मखियां, अब नेह को बंधन क्योंहूं छुटै ना॥७२॥

कोउ रिझवारिन यों 'रसखानि', कहै मुकतानि सों माँग भरौंगी।
कोऊ कहै गहनो अँग अंग, दुकूल सुगंध सन्यो पहिरौंगी॥
तू न कहै यों कहै तो कहौं हूं, कहूं न कहूं तेरे पाँय परौंगी।
देखहु, याहि सुफूल की माल, जसोमति लाल निहाल करौंगी॥७३॥

देखिहौं आँखिन सों पिय को, सुनिहौं अरु कान सों बातन प्यारी।
बाँके अनंगनि रंगनि की, सुरभीन सुगंधनि नाक में डारी॥

त्यौं 'रसखानि' हिये में धरौं, वहि साँवरी मूरति मैन उजारी।
गाँव भरो कोऊ नाँव धरो, हौं तो साँवरी पै बनिहौं सुकुमारी ॥७४॥
काल्हि पर्‌यो मुरली धुनि मैं, 'रसखानि' जू कानन नाम हमारो।
ता दिन तैं नहिं धीर रह्यो, जग जानि लियो अति कीनो पँवारो ॥
गाँवन गाँवन में अब तो, बदनाम भई सब सों कै किनारो।
तौ सजनी फिरि फेरि कहौं, पिय मेरो वही जग ठोंकि नगारो ॥७५॥
नवरंग अनंग भरी छवि सों, वह मूरति आँखि गड़ी ही रहै।
बतिया मन की मन ही में रहै, घतिया उर बीच अड़ी ही रहै ॥
तबहूं 'रसखानि' सुजान अली, नलिनी दल बूँद पड़ी ही रहै।
जिय की नहिं जानत हौं सजनी, रजनी अँसुवान लड़ी ही रहै ॥७६॥
उनहीं के सनेहन सानी रहैं, उनहीं के जु नेह दिवानी रहैं।
उनहीं की सुनैं, न औ' बैन, त्यों सैन सों चैन अनेकन ठानी रहैं ॥
उनहीं सँग डोलन में 'रसखानि', सबै सुख सिंधु अघानी रहैं।
उनहीं बिन ज्यों जलहीन ह्वै मीन सी, आँखि मेरी अँसुवानी रहैं ॥७७॥
खंजन-नैन फँदे पिंजरा छवि, नाहिं रहैं थिर कैसहूं माई।
छूटि गई कुलकानि सखी, 'रसखानि' लखी मुसकान सुहाई ॥
चित्र कढ़े से रहैं मेरे नैन, न बैन कढ़ै मुख दीन्हे दुहाई।
कैसी करौं जित जाउँ तितै, सब बोल उठैं यह बावरी आई ॥७८॥

अबहीं गई खिरक गाइ के दुहाइबें को,
बावरी ह्वै आई डारि दोहनी यों पानि की।
कोऊ कहै छरी, कोऊ भौन परी डरी, कोऊ—
कोऊ कहै मरी, गति हरी अँखियानि की ॥
सास ब्रत ठानै, नंद बोलत सयाने धाइ,
दौरि दौरि जानै, मानै खोरि देवतानि की।
सखी सब हँसै मुरझानि पहिचानि, कहूं—
देखी मुसकानि वा अहीर 'रसखानि' की ॥७९॥

बंसी बजावत आनि कढ़्यो री, गली में अली कछु टोना सों डारैं ।
नेक चितै तिरछी करि दीठि, चलो गयो मोहन मूठि सी मारैं ॥
ताही घरी सों परी वह सेज पै, प्यारी न बोलति प्रानहुँ वारैं ।
राधिका जीहै तो जीहैं सबै, न तो पीहैं हलाहल नंद के द्वारैं ॥८०॥
बाँकी बिलोकनि रंग भरी, 'रसखानि' खरी मुसकानि सुहाई ।
बोलत बैन अमीरस दैन, महारस ऐन सुने सुखदाई ॥
कुंजन में पुरबीथिन में पिय, गोहन लागि फिरौं मैं री माई ।
बाँसुरी टेर सुनाइ अली, अपनाइ लई ब्रजराज कन्हाई ॥८१॥
बजी है बजी 'रसखानि' बजी, सुनि कै अब गोपकुमारि न जी है ।
न जीहै कदाचित कामिनी कोऊ, जु कान परी वह तान कु पीहै ॥
कुँ पीहै बचाव को कौन उपाव, तियान पै मैन ने सैन सजी है ।
सजी है तो मेरो कहा बस है, जब बैरिनि बाँसुरी फेरि बजी है ॥८२॥
आजु अली इक गोपलली, भई बावरी नेकु न अंग सँभारै ।
मात अघात न देवन पूजत, सासु सयानी सयानी पुकारै ॥
यों 'रसखानि' घिरयो सिगरो ब्रज, आन को आन उपाय बिचारै ।
कोऊ न कान्हर के कर तें, वह बैरिनि बाँसुरिया गहि जारै ॥८३॥
ए सजनी वह नंद को साँवरो, या बन धेनु चराइ गयो है ।
मोहिनि ताननि गोधन गाइ कै, बेनु बजाइ रिझाइ गयो है ॥
ताही घरी कछु टोना सों कै, 'रसखानि' हिये में समाइ गयो है ।
कोऊ न काहू की कानि करै, सिगरो ब्रज बीर बिकाइ गयो है ॥८४॥
मो मन मोहन कों मिलि कै, मधुरी मुसकान दिखाय दई ।
वह मोहिनी मूरति मैनमयी, सबही चितई तब हौं चितई ॥
उन तौ अपने अपने घर की, 'रसखानि' भली बिधि राह लई ।
कछु मोहि को पाप परयौ पल में, मग आवत पौरि पहार भई ॥८५॥
लाज को लेप चढ़ाइ कै अंग, पचीं सब सीख को मंत्र सुनाइ कै ।
गारुड़ ह्वै ब्रज लोग थक्यो, करि औषधि बासुक सौंह दिवाइ कै ॥

ऊधो सों को 'रसखानि' कहै, जिन चित्त धर्‌यो तुम एते उपाइ कै।
कारे बिसारे को चाहैं उतार्‌यो, अरे विष बावरे राख लगाइ कै ॥८६॥
'रसखानि' सुन्यो है बियोग के ताप, मलीन महा दुति देह तिया की।
पंकज सो मुख गो मुरझाइ, लगैं लपटैं बिरहागि हिया की॥
ऐसे में आवत कान्ह सुने, हुलसी सु तनी तरकी अँगिया की।
यों जग जोति उठी तन की, उसकाइ दई मनौ बाती दिया की ॥८७॥
काह कहूं रतियां की कथा, बतियां कहि आवत है न कछू री।
आय गोपाल लियो भरि अंक, कियो मन भायो पियो रस कूं री॥
ताहि दिना सों गड़ीं अँखियां, 'रसखानि' मेरे अँग अंग में पूरी।
पै न दिखाई परै अब साँवरो, दै के वियोग विथा की मजूरी ॥८८॥

जल की न घट भरैं, मग की न पग धरैं,
घर की न कछु करैं, बैठी भरैं साँसु री।
एकै सुनि लोट गरैं, एकै लोटपोट भई,
एकनि के दृगनि निकस आए आँसु री॥
कहैं 'रसखानि' सों सबै ब्रजबनिता बिधि
बधिक कहाये हाय हुई कुल हाँसु री।
करिये उपाय बाँस डारिये कटाय,
नाहिं उपजैगो बाँस नाहिं बाजै फेरि बाँसुरी ॥८९॥

दूध दुह्यो सीरो पर्‌यो तातो न जमायो बीर,
जामन दयो सो धरो धरोई खटाइगो।
आन हाथ आन पाँय सबही के तबहीं तें,
जबहीं ते 'रसखानि' ताननि सुनाइगो॥
ज्यों ही नर त्यों ही नारी तैसोई तरुन बारी,
कहिये कहा री सब ब्रज बिललाइगो।
जानिये न आली यह छोहरा जसोमति को,
बाँसुरी बजाइगो कि विष बगराइगो ॥९०॥

एरी आजु काल्हि सब लोक-लाज त्यागि, दोऊ
सीखे हैं सबै विधि सनेह सरसाइबो।
यह 'रसखानि' दिना द्वै मैं बात फैलि जैहै,
कहां लौं सयानी चंदा हाथन छिपाइबो॥
आजु हौं निहारयो बीर निपट कलिंदी तीर,
दोउन को दोउन सों मुरि मुसकाइबो।
दोऊ परैं पैयां, दोऊ लेत हैं बलैयां,
उन्हें भूलि गईं गैयां, इन्हें गागर उठाइबो॥६१॥

कौन ठगौरी करी हरि आजु, बजाइ के बांसुरिया रस भीनी।
तान सुनी जिनहीं तिनहीं, तबहीं तिन लाज बिदा करि दीनी॥
घूमैं घरी घरी नंद के द्वार, नवीनी कहा कहूं बाल प्रवीनी।
या ब्रजमंडल मैं 'रसखानि', सु कौन भटू जो लटू नहिं कीनी॥६२॥

लोक की लाज तजी तबहीं, जब देख्यो सखी ब्रजचंद सलोनो।
खंजन मीन सरोजन की छबि, गंजन नैन लला दिन होनो॥
'रसखानि' निहारि सकैं जु सम्हारिकै, को तिय है वह रूप सुठोनो।
भौंह कमान सों जोहन को सर, बेधत प्रानन नंद को छौनो॥६३॥

मंजु मनोहर रूप लखा, तबहीं सबहीं पतिहीं तजि दीनी।
प्रान पखेरु परे तलफैं, वह रूप के जाल में आस अधीनी॥
आंखि सों आंखि लड़ी जबहीं, तब से ये रहैं अँसुवा रँग भीनी।
या 'रसखानि' अधीन भईं, सब गोप लली तजि लाज नवीनी॥६४॥

अँखियां अँखियां सों मिलाय बनाय, हिलाय रिझाय हिया भरिबो।
बतियां चित चोरन चेटक सी, रस चारु चरित्रन ऊचरिबो॥
'रसखान' के प्रान सुधा भरिबो, अधरान पै त्यों अधरा धरिबो।
इतने सब मैन के मोहनी जंत्र, पै मंत्र बसीकर हू करिबो॥६५॥

जा दिन तें निरख्यो नँदनंदन, कानि तजी घर बंधन छूट्यो।
चारु बिलोकनि की न सुमार, सम्हारि गई, मन मार ने लूट्यो॥

सागर कों सरिता जिमि धावत, रोकि रहे कुल को पुल टूट्यो।
मत्त भयो मन संग फिरै, 'रसखानि' सरूप सुधारस घूँट्यो ॥९६॥

कानन कुंडल, मोरपखा सिर, कंठ में माल बिराजति है।
मुरली कर में, अधरा मुसकानि, तरंग महाछवि छाजति है॥
'रसखानि' लखे तन पीतपटा, सतदामिनि की दुति लाजति है।
वह बाँसुरी की धुनि कान परें, कुलकानि हियो तजि भाजति है ॥९७॥

बंक बिलोकन है दुख मोचन, दीरघ लोचन रंग भरे हैं।
घूमत वारुनी पान किये जिमि, झूमत आनन रंग ढरे हैं॥
गंडन पै झलकै छवि कुंडल, नागरि नैन बिलोकि अरे हैं।
'रसखानि' हरैं ब्रजबालनि के मन, ईषद हाँसी की फाँसी परे हैं ॥९८॥

अति लोक की लाज, समूह में घेर के राखि थकी सब संकट सों।
पल में कुलकानि की मेड़न की, नहिं रोकी रुकी पल के पट सों॥
'रसखानि' सों केतो उचाटि रही, उचटी न सँकोच की औचट सों।
अलि कोटि कियो हटकी न रही, अँटकी अँखियां लटकी लट सों ॥९९॥

सुंदर स्याम सजे तन मोहन, जोहन मैं चित चोरत हैं।
बाँके बिलोकनि की अवलोकनि, नोकनि के दृग जोरत हैं॥
'रसखानि' मनोहर रूप सलोने को, मारग तें मन मोरत हैं।
गृहकाज समाज सबै कुल लाज, लला ब्रजराज जू तोरत हैं॥१००॥

नैनन बंक बिसाल के बानन, झेलि सकै अस कौन नवेली।
वेधत है हिय तीछन कोर सों, मार गिरी तिय केतिक हेली॥
छोड़ैं नहीं छिनहूं 'रसखानि', सु लागी फिरै द्रुम सों जिमि बेली।
रौर परी छवि की ब्रजमंडल, कुंडल गंडन कुंतल केरी ॥१०१॥

मकराकृत कुंडल गुंज की माल, वे लाल लसैं पर पाँवरिया।
बछरान चरावन के मिस भावतो, दै गयो भावती भाँवरिया॥
'रसखानि' बिलोकत ही सिगरी, भईं बावरिया ब्रज डाँवरिया।
सजनी इहि गोकुल में विष सों, बगरायो है नंद के साँवरिया ॥१०२॥

मोहन की मुरली सुनि कै, वह बौरी ह्वै आनि अटा चढ़ि झाँकी।
गोप बड़ेन की दीठि बचाइ कै, दीठि सों दीठि मिली दुहुधां की॥
देखत मोह भयो अँखियानि में, को करै लाज औ कानि कहां की।
कैसे छुटाई छुटै अँटकी, 'रसखानि' दुहूं की बिलोकनि बाँकी॥१०३॥

मोर के पंखन मौर बन्यो, दिन दूलह है अली नंद को नंदन।
श्री वृषभानसुता दुलही, दिन जोरी बनी बिधना सुखकंदन॥
'रसखानि' न आवत मो पै कह्यो, कछु दोऊ फँदे छवि प्रेम के फंदन।
जाहि बिलोके सबै सुख पावत, ये ब्रज जीवन हैं दुखदंदन॥१०४॥

आजु अचानक राधिका, रूपनिधान सों भेंट भई बन माहीं।
देखत दीठि जुरी 'रसखानि', मिले भरि अंक दिये गलबाहीं॥
प्रेम पगी बतियां दुहुधां की, दुहूं को लगी अति ही चित चाही।
मोहनी मंत्र बसीकर जंत्र, हहा पिय की तिय की नहिं-नाहीं॥१०५॥

सोई है रास में नैसुक नाचि कै, नाच नचाये कितै सबको जिन।
सोई है री 'रसखानि' इहै, मनुहारहूं सूधे चितौत नहीं छिन॥
नो मैं धौं कौन मनोहर भाव, बिलोकि भयो बस हा हा करी तिन।
औसर ऐसो मिलै न मिलै, फिर लंगर मोड़ो कनौड़ो करै किन॥१०६॥

मोहन के मन भाय गयो, इक भाव सो ग्वालिन गोधन गायो।
तातें लग्यो चट चौहट सों, दुरवाइ दै गात सों गात छुवायो॥
'रसखानि' लखी यह चातुरता, चुपचाप रही जब लौं घर आयो।
नैन नचाइ चितै मुसकाइ, सु ओट ह्वै जाइ अँगूठा दिखायो॥१०७॥

बिहरैं पिय प्यारी सनेह सने, छहरैं चुनरी के झवा झहरैं।
सिहरैं नव जोबन रंग अनंग, सुभंग अपंगनि की गहरैं॥
बहरैं 'रसखानि' नदी रस की, घहरैं बनिता कुलहू भहरैं।
कहरैं बिरहीजन आतप सों, लहरैं लली लाल लिये पहरैं॥१०८॥

दृग दूने खिंचे रहैं कानन लौं, लट आनन पै लहराय रही।
छक छैल छबीली छटा छहराय कै, कौतुक कोटि दिखाय रही॥

झुक झूम झमाकन चूम अमी, चहि चाँदनी चंद चुराय रही।
मन भाय रही 'रसखानि' महा, छवि मोहन को तरसाय रही॥१०६॥
अंग ही अंग जराव जरी, अरु सीस बनी पगिया जरतारी।
मोतिन माल हिये लटकैं, लटुआ लटकै सब घूँघरवारी॥
पूरन पुन्यनि तैं 'रसखानि', ये मोहिनी मूरति आन निहारी।
चारो दिसा के महाअघ हाँकि, जो झाँकै झरोखे में बाँकेबिहारी॥११०॥
लाड़ली लाल लसैं लखिये, अलि पुंजनि कुंजनि में छवि गाढ़ी।
ऊजरी ज्यों बिजुरी सी जुरी, चहुँ गूजरी केलि कला सम काढ़ी॥
त्यौं 'रसखानि' न जानि परै, सुखमा तिहुँ लोकन की अति बाढ़ी।
बालन लाल लिये बिहरैं, छहरैं वर मोरपखी सिर ठाढ़ी॥१११॥
मान की औधि है आधी घरी, अरु जो 'रसखान' डरै डर के डर।
तोरिये नेह न छोड़िये पाँ परौं, ऐसे कटाच्छ महा हियरा हर॥
लाल गुपाल को हाल बिलोक री, नेक छुवै किन दै कर सों कर।
ना कहिबै पर वारत प्रान, कहा लख वारिहै हां कहिबै पर॥११२॥
आईं सबै ब्रज-गोपलली, ठिठकीं ह्वै गलीं जमुना जल न्हाने।
औचक आइ मिले 'रसखानि', बजावत बेनु सुनावत ताने॥
हा हा करी सिसकीं सिगरी, मति मैन हरी हियरा हुलसाने।
घूमैं दिवानी अमानी चकोर सों, ओर से दोऊ चलैं दृग बाने॥११३॥
वह सोइ हुती परजंक लली, लला लीनो सु आय भुजा भरिकै।
अकुलाय के चौंक उठी सु डरी, निकरी चहै अंकनि तें फरिकै॥
झटका झटकी में फटो पटुका, दरकी अँगिया मुकता झरिकै।
मुख बोल कढ़ैं रिस सों 'रसखानि', हटो जु लला निबिया धरिकै॥११४॥
एक समै इक सुंदरी को, ब्रजजीवन खेलत दृष्टि परयो है।
बाल प्रवीन प्रवीनता कै, सरकाइ कै काँध पै चीर धरयो है॥
यों रसही रसही 'रसखानि', सखी अपनो मनभायो करयो है।
नंद के लाड़िले ढाँकि दै सीस, इ हा हमरो दुहुँ हाथ भरयो है॥११५॥

सोई हुती पिय की छतिया लगि, बाल प्रबीन महा मुद माने।
केस खुले छहरैं बहरैं, फहरैं छबि देखत मैन अमाने॥
वा रस में 'रसखानि' पगी, रति रैन जगी अँखिया अनुमाने।
चंद पै बिंब औ बिंब पै कैरव, कैरव पै मुकतान प्रधाने॥११६॥

अंत ते न आयो यहाँ गाँवरे को जायो,
माई बाप री जिवायो प्याय दूध दधि बारे को।
सोई 'रसखानि' तजि बैठो पहिचान जान,
लोचन नचावत नचैया द्वार द्वारे को॥
मैया की सौं सोच कछू मटुकी उतारे को न,
गोरस के ढारे को न चीर चीरि डारे को।
यहै दुख भारी गहै डगर हमारी देखो,
नगर हमारे ग्वार बगर हमारे को॥११७॥

एक समै मुरली धुनि में, 'रसखानि' लियो कहुँ नाम हमारो।
ता दिन तें यहि बैरी बिसासिन, झाँकन देत नहीं है दुवारो॥
होत चवाव बचाओं सु क्यों करि, क्यों अलि भेंटिये प्रान पियारो।
दीठि परे ही लग्यो चटको, अँटको हियरे पियरे पटवारो॥११८॥

कान्ह भये बस बाँसुरी के, अब कौन सखी हमको चहिहै।
निसि द्यौस रहै यह साथ लगी, यह सौतिन साँसत को सहिहै॥
जिन मोहि लियो मनमोहन को, 'रसखानि' सु क्यों न हमैं दहिहै।
मिलि आवो सबै कहुँ भाग चलैं, अब तो ब्रज में बँसुरी रहिहै॥११९॥

काह कहूं सजनी सँग की, रजनी नित बीतै मुकुंद को हेरी।
आवन रोज कहैं मनभावन, आवन की न कबौं करी फेरी॥
सौतिन भाग बढ्यो ब्रज में, जिन लूटत हैं निसि रंग घनेरी।
मो 'रसखानि' लिखी बिधना, मन, मारि कै आपु बनी हौं अहेरी॥१२०॥

एक तें एक लौं कानन में रहै, ढीठ सखा सँग लीनें कन्हाई।
आवत ही हौं कहा लौं कहौं, कोऊ कैसे सहै अति की अधिकाई॥

खायो दही मेरो भाजन फोरयो, न छोड़त चीर दिवाये दुहाई।
'रसखानि' तिहारिहिं सौंह जसोमति, लाज मरूं पर छूट न पाई ॥१२१॥
सुन री पिय मोहन की बतियां, अति ढीठ भयो, नहिं कानि करै।
निसि बासर औसर देत नहीं, छिनहीं छिन द्वारे ही आनि अरै॥
निकसो मति नागरि डौंड़ी बजी, ब्रजमंडल में यह कौन भरै।
अब रूप की रौरि परी 'रसखानि', रहै तिय कोऊ न मांझ घरै॥१२२॥
सोहत है चँदवा सिर मोर को, तैसिय सुंदर पाग कसी है।
तैसिये गोरज भाल विराजत, तैसी हिये बनमाल लसी है॥
'रसखानि' बिलोकत बौरी भई, दृग मूँदि कै ग्वालि पुकार हँसी है।
खोलि री घूँघट, खोलौं कहा, वह मूरति नैनन मांझ बसी है॥१२३॥
देखन को सखि नैन भये, सु सने तन आवत गाइन पाछैं।
कान भये इन बातन के, सुनिवे को अमीनिधि बोलन आछैं॥
पै सजनी न सम्हारि परै, वह बाँकी विलोकन कोर कटाछैं।
भूमि भयो न हियो मेरो आली, जहां पिय खेलत काछिनी काछैं॥१२४॥
जा दिन तें मुसकानि चुभी उर, ता दिन तें जु भई बन वारी।
कुंडल लोल कपोल महाछवि, कुंजन तें निकस्यो सुखकारी॥
हौं सखी आवत ही बगरैं पग, पैंड तजी रिझई बनवारी।
'रसखानि' परी मुसकानि के पानिन, कौन गहै कुलकानि विचारी॥१२५॥
मैन मनोहर बेनु बजै, सु सजे तन सोहत पीत पटा है।
यों दमकै चमकै झमकै दुति, दामिनि की मनो स्याम घटा है॥
'रसखानि' महा मधुरी मुख की, मुसकानि करै कुलकानि कटा है।
ए सजनी ब्रजराजकुमार, अटा चढ़ि फेरत लाल बटा है॥१२६॥
कौन को लाल सलोनो सखी यह, जाकी बड़ी अँखियां अनियारी।
जोहन बंक बिसाल के बानन, वेधत है हिय तीछन भारी॥
'रसखानि' सम्हारि परै नहिं चोट, सु कोटि उपाय करौं सुखकारी।
भाल लिख्यो विधि नेह को बंधन, खोलि सकै अस को हितकारी॥१२७॥

नैन लख्यो जब कुंजन तें, बनि कै निकस्यो मटक्यो मटक्यो री।
सोहत कैसे हरा डुपटो, सिर तैसे किरीट लसै लटक्यो री॥
को 'रसखानि' रहै अँटक्यो, हटक्यो, ब्रजलोग फिरैं भटक्यो री।
रूप अनूपम वा नट को, हियरे अँटक्यो अँटक्यो अँटक्यो री॥१२८॥
आजु सखी इक गोपकुमार ने, रास रच्यो इक गोप के द्वारे।
सुंदर बानिक सो 'रसखानि', बन्यो वह छोहरा भाग हमारे॥
ए बिधना जो हमें हँसती, अब नेकु कहूं उत को पग धारे।
ताहि बदौं फिरि आवै घरै, बिनही तन औ मन जोवन वारे॥१२९॥
वा मुसकान पै प्रान दियो, जिय जान दियो वह तान पै प्यारी।
मान दियो मन मानिक के सँग, वा मुख मंजु पै जोबन वारी॥
वा तन को 'रसखानि' पै री, तन ताहि दियो नहिं आन बिचारी।
सो मुँह मोड़ करौं अब का, हहा लाल लै आज समाज मैं ख्वारी॥१३०॥
समझी न कछू अजहूं हरि सों, ब्रज नैन नचाइ नचाइ हँसै।
नित सास की सीरी उसाँसनि सों, दिन ही दिन माइ री कांति नसै॥
चहुँ ओर बबा की सौं सोर सुनै, मन मेरेऊ आवत रीस कसै।
पै कहा करौं वा 'रसखानि' बिलोकि, हियो हुलसै हुलसै हुलसै॥१३१॥
पूरब पुन्यनि तें चितई जिन, ये अँखियां मुसकानि भरी री।
कोऊ रही पुतरी सी खरी, कोऊ घाट गिरी, कोऊ बाट परी री॥
जे अपने घर ही 'रसखानि', कहैं अरु हौंसनि जाति मरी री।
लाल जे बाल बिहाल करी, ते बिहाल करी न निहाल करी री॥१३२॥
औचक दीठि परे कहुँ कान्ह जू, तासों कहै ननदी अनुरागी।
सो सुनि सास रही मुख फेरि, जिठानी फिरै जिय में रिस पागी॥
नीके निहारि कै देखे न आँखिन, हौं कबहूं भरि नैन न जागी।
हौं पछितात कहै सजनी, कि कलंक लग्यो पर अंक न लागी॥१३३॥
मोरपखा मुरली बनमाल, लखी हिय मैं हियरा उमग्यो री।
ता दिन तें निज बैरिन के, कहि कौन न बोल कुबोल सह्यो री॥

अब तौ 'रसखानि' सों नेह लग्यो, कोऊ एक कह्यो कोऊ लाख कह्यो री।
और ते रंग रहो न रहो, इक रंग रँगी सोई रंग रह्यो री॥१३४॥
आजु भटू सुन री बट के तर, नंद के साँवरे रास रच्यो री।
नैननि सैननि बैननि मैं, नहिं कोऊ मनोहर भाव बच्यो री॥
जद्यपि राखन कौं कुलकानि, सबै ब्रजबालन प्रान तच्यो री।
तद्यपि वा 'रसखानि' के हाथ, बिकान औ अंत लच्यो पै लच्यो री॥१३५॥

प्रेमवाटिका

प्रेम-अयनि श्री राधिका, प्रेम-बरन नँदनंद।
'प्रेमवाटिका' के दोऊ, माली-मालिन द्वंद ॥१॥

प्रेम-प्रेम सब कोउ कहत, प्रेम न जानत कोय।
जो जन जानै प्रेम तो, मरै जगत क्यों रोय ॥२॥

प्रेम अगम अनुपम अमित, सागर-सरिस बखान।
जो आवत एहि ढिग, बहुरि, जात नाहिं 'रसखान' ॥३॥

प्रेम-बारुनी छानि कै, बरुन भये जलधीस।
प्रेमहिं तें विष पान करि, पूजे जात गिरीस ॥४॥

प्रेम रूप दर्पन अहो, रचै अजूबो खेल।
या में अपनो रूप कछु, लखि परिहै अनमेल ॥५॥

कमल तंतु सों छीन अरु, कठिन खड़ग की धार।
अति सूधो टेढ़ो बहुरि, प्रेम-पंथ अनिवार ॥६॥

लोक-वेद-मरजाद सब, लाज काज संदेह।
देत बहाये प्रेम करि, विधि - निषेध को नेह ॥७॥

कबहुँ न जा पथ भ्रम-तिमिर, रहै सदा सुखचंद।
दिन दिन बाढ़त ही रहै, होत कबहुँ नहिं मंद ॥८॥

भले वृथा करि पचि मरौ, ज्ञान - गरूर बढ़ाय।
बिना प्रेम फीको सबै, कोटिन किये उपाय ॥९॥

श्रुति, पुरान, आगम, स्मृतिहि, प्रेम सबहिं को सार।
प्रेम बिना नहिं उपज हिय, प्रेम-बीज अँकुवार ॥१०॥

आनँद-अनुभव होत नहिं, बिना प्रेम जग जान।
कै वह बिसयानंद, कै, ब्रह्मानंद बखान ॥११॥

ज्ञान, कर्मऽरु उपासना, सब अहमिति को मूल।
दृढ़ निश्चय नहिं होत, बिन, किये प्रेम अनुकूल ॥१२॥
शास्त्रन पढ़ि पंडित भये, कै मोलवी कुरान।
जुपै प्रेम जान्यो नहीं, कहा कियो 'रसखान' ॥१३॥
काम, क्रोध, मद, मोह, भय, लोभ, द्रोह, मात्सर्य।
इन सबही तें प्रेम है, परे, कहत मुनिवर्य ॥१४॥
बिन गुन जोबन रूप धन, बिन स्वारथ हित जानि।
शुद्ध, कामना तें रहित, प्रेम सकल 'रसखानि' ॥१५॥
अति सूछम कोमल अतिहि, अति नियरो अति दूर।
प्रेम कठिन सब तें सदा, नित इकरस भरपूर ॥१६॥
जग में सब जान्यो परै, अरु सब कहै कहाय।
पै जगदीसऽरु प्रेम यह, दोऊ अकथ लखाय ॥१७॥
जेहि बिनु जाने कछुहि नहिं, जान्यो जात बिसेस।
सोई प्रेम, जेहि जानि कै, रहि न जात कछु सेस ॥१८॥
दंपति सुख अरु विषय रस, पूजा, निष्ठा, ध्यान।
इनतें परे बखानिये, शुद्ध प्रेम 'रसखान' ॥१९॥
मित्र, कलत्र, सुबंधु, सुत, इनमें सहज सनेह।
शुद्ध प्रेम इनमें नहीं, अकथ कथा सविसेह ॥२०॥
इक अंगी बिनु कारनहि, इकरस सदा समान।
गनै प्रियहि सर्वस्व जो, सोई प्रेम प्रमान ॥२१॥
डरै सदा, चाहै न कछु, सहै सबै जो होय।
रहै एकरस चाहि कै, प्रेम बखानो सोय ॥२२॥
प्रेम प्रेम सब कोउ कहै, कठिन प्रेम की फाँस।
प्रान तरफि निकरै नहीं, केवल चलत उसाँस ॥२३॥
प्रेम हरी को रूप है, त्यों हरि प्रेम सरूप।
एक होइ द्वै यों लसैं, ज्यों सूरज अरु धूप ॥२४॥

ज्ञान, ध्यान, विद्या, मती, मत, विश्वास, विवेक।
विना प्रेम सब धूर हैं, अग जग एक अनेक ॥२५॥
प्रेम-फाँस में फँसि मरै, सोई जिये सदाहिं।
प्रेम-मरन जाने विना, मरि कोउ जीवत नाहिं ॥२६॥
जग मैं सब तें अधिक अति, ममता तनहिं लखाय।
पै या तनहूं तें अधिक, प्यारो प्रेम कहाय ॥२७॥
जेहि पाये बैकुंठ अरु, हरिहूं की नहिं चाहि।
सोइ अलौकिक सुद्ध सुभ, सरस सुप्रेम कहाहि ॥२८॥
कोउ याहि फाँसी कहत, कोउ कहत तरवार।
नेजा भाला तीर कोउ, कहत अनोखी ढार ॥२९॥
पै मिठास या मार के, रोम रोम भरपूर।
मरत जियै, झुकतो थिरै, बनै सु चकना चूर ॥३०॥
पै एतो हूं हम सुन्यो, प्रेम अजूबो खेल।
जाँबाजी बाजी जहाँ, दिल का दिल से मेल ॥३१॥
सिर काटो, छेदो हियो, टूक टूक करि देहु।
पै याके बदले बिहँसि, वाह वाह ही लेहु ॥३२॥
अकथ कहानी प्रेम की, जानत लैली खूब।
दो तनहूं जहँ एक भे, मन मिलाइ महबूब ॥३३॥
दो मन इक होते सुन्यो, पै वह प्रेम न आहि।
होइ जबै द्वै तनहुं इक, सोई प्रेम कहाहि ॥३४॥
याही तें सब मुक्ति तें, लही बड़ाई प्रेम।
प्रेम भये नसि जाहिं सब, बँधे जगत के नेम ॥३५॥
हरि के सब आधीन पै, हरी प्रेम आधीन।
याही तें हरि आपुहीं, याहि बड़प्पन दीन ॥३६॥
वेद-मूल सब धर्म यह, कहैं सबै श्रुतिसार।
परम धर्म है ताहु तें, प्रेम एक अनिवार ॥३७॥

जदपि जसोदा नंद अरु, ग्वाल बाल सब धन्य।
पै या जग में प्रेम को, गोपी भई अनन्य ॥३८॥
वा रस की कछु माधुरी, ऊधो लही सराहि।
पावै बहुरि मिठास अस, अब दूजो को आहि ॥३६॥
श्रवन, कीरतन, दरसनहिं, जो उपजत सोइ प्रेम।
शुद्धाशुद्ध विभेद तें, द्वै विध ताके नेम ॥४०॥
स्वारथमूल अशुद्ध त्यों, शुद्ध स्वभावऽनुकूल।
नारदादि प्रस्तार करि, कियो जाहि को तूल ॥४१॥
रसमय, स्वाभाविक विना, स्वारथ अचल, महान।
सदा एकरस, शुद्ध सोइ, प्रेम अहै 'रसखान' ॥४२॥
जातें उपजत प्रेम सोइ, बीज कहावत प्रेम।
जामें उपजत प्रेम सोई, क्षेत्र कहावत प्रेम ॥४३॥
जातें पनपत, बढ़त, अरु, फूलत, फलत महान।
सो सब प्रेमहिं प्रेम यह, कहत रसिक 'रसखान' ॥४४॥
वही बीज अंकुर वही, एक वही आधार।
डाल, पात, फल, फूल सब, वही प्रेम सुख-सार ॥४५॥
जो जातें, जामें, बहुरि, जाहित कहियत बेस।
सो सब प्रेमहिं प्रेम है, जग 'रसखान' असेस ॥४६॥
कारज-कारन-रूप यह, प्रेम अहै 'रसखान'।
कर्ता, कर्म, क्रिया, करण, आपहि प्रेम बखान ॥४७॥
राधा माधव सखिन सँग, विहरत कुंज-कुटीर।
रसिकराज 'रसखानि' जहँ, कूजत कोइल कीर ॥४८॥
विधु, सागर, रस, इंदु सुभ, बरस सरस 'रसखानि'।
'प्रेमवाटिका' रचि रुचिर, चिर हिय हरखि बखानि ॥४६॥
अरपी श्री हरिचरन जुग, पदुम पराग निहार।
विचरहिं यामें रसिकवर, मधुकर-निकर अपार ॥५०॥

स्याम सघन घन घेरि कै, रस बरस्यो 'रसखानि'।
भई दिवानी पान करि, प्रेम-मद्य मनमानि ॥१२॥
अरी अनोखी बाम, तू आई गौने नई।
बाहर धरसि न पाम, है छलिया तुव ताक मैं ॥१३॥
बिमल सरल रसखानि मिलि, भई सकल रसखानि।
सोई नव रस खानि को, चित चातक 'रसखानि' ॥१४॥
सरस नेह लवलीन नव, द्वै सुजान रसखानि।
ताके आस बिसास सों, पगे प्रान 'रसखानि' ॥१५॥
वंक बिलोकनि हँसनि मुरि, मधुर बैन रस सानि।
मिले रसिक रसराज दोउ, हरखि हिये 'रसखानि' ॥१६॥
या छवि पै 'रसखानि' अब, वारौं कोटि मनोज।
जाकी उपमा कविन नहिं, पाई, रहे सु खोज ॥१७॥

रसखान का केवल एक ही पद प्राप्त है वह निम्नांकित है।

धमार (राग सारंग)

मोहन हो हो हो हो होरी।
काल्ह हमारे आँगन गारी दै आयो सो को री॥
अब क्यों दुरि बैठे जसुदा ढिग निकसो कुंजबिहारी।
उमग उमग आई गोकुल की वे सब भई धनवारी॥
तबहिं लाल ललकार निकारे रूपसुधा की प्यासी।
लपटि गई घनस्याम लाल सों चमक चमक चपला सी॥
काजर दे भजि भार भरुवा के हँहि हँसि ब्रज की नारी।
कहै 'रसखान' एक गारी पर सौ आदर बलिहारी॥

जातक

[प्रथम तथा द्वितीय खण्ड]

अनुवादक : भदंत आनन्द कौसल्यायान

इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान पं० जयचन्द्र विद्यालंकार का कथन है कि "विश्व के वाङ्मय में 'जातक' जन-साधारण की सब से पुरानी कहानियाँ हैं; मनोरंजकता, सुरुचि, सरलता, आडम्बरहीन सौन्दर्य और शिक्षाप्रद होने में उनका मुकाबला नहीं हो सकता। ये बच्चों के लिये सरल और आकर्षक, जवानों और बूढ़ों के लिये भी रुचिकर और विद्वानों के लिये प्राचीन भारत के जीवन का जीता-जागता चित्रण करने के कारण अत्यन्त मूल्यवान हैं।"

प्रथम खंड, पृष्ठ संख्या ५४०—२५; डिमाई साइज़; सजिल्द मूल्य ५)
द्वितीय खंड, पृष्ठ संख्या ४६४—२४ डिमाई साइज़; सजिल्द मूल्य ५)

मिलने का पता :

साहित्य मंत्री—हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग